अंक : १४२/१४३
अप्रैल-सितंबर २०१८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां
डॉ. रमाकांत शर्मा, कामेश्वर,
डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव,
डॉ. कुंवर प्रेमिल, मनोज कुमार शिव,
माला वर्मा, महेंद्र सिंह,
गोविंद सेन, डॉ. हंसा दीप

आमने-सामने
डॉ. हंसा दीप

सागर-सीपी
डॉ. सुधाकर मिश्र

४० रुपये

रक्षाबंधन का यादगार और

अनमोल उपहार!

राखी उपहार
ट्रान्सफर करें
बहन के अकाऊंट में!

बैंक ऑफ महाराष्ट्र की ओर से
अनमोल रिश्ते को
रक्षाबंधन की
हार्दिक शुभकामनाएं

महासंचय
सिस्टमॅटिक डिपाज़िट प्लॅन

कभी पांच तो कभी पचास

- स्थिर व अस्थिर विकल्पों के साथ आवर्ती जमा योजना
  रु. 100/- के गुणज में कोर किस्त का 10 गुना, अधिकतम
  रु. 50,000/- प्रतिमाह के अधीन (कोर घटक सहित)
- ऋण सुविधा : जमा राशी के 90% तक

बैंक ऑफ महाराष्ट्र
Bank of Maharashtra
भारत सरकार का उद्यम
एक परिवार एक बैंक

अधिक जानकारी के लिए संपर्क : टोल फ्री क्र.: 1800-233-4526 | वेबसाईट : www.bankofmaharashtra.in | नेट बैंकिंग : https://www.mahaconnect.in

फोन/ई-मेल पर किसी के साथ अपने कार्ड क्रमांक/कार्ड समाप्ति दिनांक/पिन/सीवीवी/ओटीपी साझा न करें।

विश्व हिंदी संस्थान द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्यिक सम्मेलन
(२७-२८ अप्रैल २०१८, कैनडा)

'कथाबिंब' संपादिका श्रीमती मंजुश्री का डॉ. जिम कैरिगियानिस (पूर्व सांसद, कैनडा) द्वारा सम्मान

डॉ. माधव सक्सेना एवं श्रीमती मंजुश्री के साथ भारत के कांउसलेट जनरल (टोरंटो) श्री दिनेश भाटिया

विश्व हिंदी संस्थान के अध्यक्ष श्री सरन घई व
संचालक डॉ. कामराज सिंधु के साथ डॉ. माधव सक्सेना

श्रीमती मंजुश्री एवं डॉ. माधव सक्सेना

अमेरिका प्रवास की कुछ झलकियां

गूगल मुख्यालय माउंटेन व्यू, कैलिफोर्निया

म्यूर वुड्स, सैन फ्रांसिस्को

नियाग्रा प्रपात, टोरंटो

क्रेटर झील, ओरिगन, अमेरिका

गुफाओं में लटकते हुए कैवर्न, लेक शास्ता, कैलिफोर्निया

अप्रैल-सितंबर २०१८
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। नदी और मैं- डॉ. रमाकांत शर्मा
।।१३।। जुलूस - कामेश्वर
।।१९।। काली माई का थान -डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव
।।२३।। बनते-मिटते रिश्ते - डॉ. कुंवर प्रेमिल
।।२७।। गुरू दक्षिणा - मनोज कुमार "शिव"
।।३३।। सफ़ेद शॉल - माला वर्मा
।।३७।। दांव - महेंद्र सिंह
।।४३।। टापू - गोविंद सेन
।।४७।। रुतबा - डॉ. हंसा दीप
।।६४।। "सज़ा"(*उपन्यास अंश*)- डॉ. रूपसिंह चंदेल

लघुकथाएं

।।१२।। लालबत्ती / आनंद बिल्थरे
।।३६।। धूप /राकेश सुमन
।।४६।। मानसिकता / नरेंद्रकौर छाबड़ा
।।५५।। ज़ुर्माना /राजेंद्र वर्मा
।।६३।। फ़ालतू-चीज़ / मुकेश शर्मा

ग़ज़लें / कविताएं

।।१७।। ग़ज़लें / डॉ. रायबहादुर चौधरी "चंदन"
।।१८।। दो कविताएं / धर्मपाल महेंद्र जैन
।।२२।। कविता / सत्यदेव संवितेंद्र

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।५१।। "आमने-सामने" / डॉ. हंसा दीप
।।५६।। "सागर-सीपी" / डॉ. सुधाकर मिश्र
।।६०।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।६७।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : गोल्डेन गेट पुल (सैन फ्रांसिस्को, अमेरिका)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

पिछले चार-पांच महीने काफ़ी गहमागहमी के रहे. जनवरी-मार्च २०१८ अंक के प्रकाशन के कुछ दिनों बाद ही हम विदेश यात्रा पर निकले. यह अंक एक संयुक्तांक के रूप में निकलेगा इसका इंगित हमने पहले ही कर दिया था. अप्रैल में टोरंटो (कनाडा) के पास ब्रैंमटन शहर में "विश्व हिंदी संस्थान" द्वारा आयोजित सम्मेलन हमारे लिए एक विशेष उपलब्धि रही. वहां कई लोग मिले जो "कथाबिंब" से परिचित थे. यह हमारे लिए एक सुखद अनुभव था. भारत, कैनाडा के अलावा अमेरिका, इंग्लैंड, मॉरीशस व अन्य कुछ देशों से भी भाग लेने प्रतिभागी आये थे. टोरंटो के बाद लगभग तीन महीने अमेरिका में बिताकर हम जुलाई अंत तक वापस स्वदेश लौटे. इस बीच इंटरनेट के माध्यम से रचनाकारों व प्रेस से लगातार हमारा संपर्क बना रहा. पिछले अंक में छः कहानियां प्रकाशित हुई थीं और इस संयुक्तांक में नौ कहानियां जा रही हैं. एक रूप में विलंब की कुछ भरपाई करने की हमने कोशिश की है. सभी कहानियां ई-मेल से प्राप्त हुईं.

इस वर्ष भोपाल में, मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग ने हिंदी-दिवस पर १४-१६ सितंबर के दौरान एक "हिंदी साहित्योत्सव" आयोजित किया. तीन दिनों के साहित्य के इस महाकुंभ में लगभग ३०० प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया. इस आयोजन में हमारी भागीदारी भी रही. पाठक इसी अंक में टोरंटो और भोपाल के कार्यक्रमों की झलकियां देख पायेंगे.

●

अब संयुक्तांक की कहानियों पर कुछ छुटपुट चर्चा : पहली कहानी *"नदी और मैं"* (डॉ. रमाकांत शर्मा) स्त्री-विमर्श की कहानी है. नब्बे वर्ष की अनुप्रिया अपनी बीती ज़िंदगी पर दृष्टिपात करती है. एक के बाद एक तीन लड़कियों के जन्म के बाद पति ने दूसरा विवाह कर लिया. लेकिन अनुप्रिया ने हार नहीं मानी. एक नदी की तरह वह अनजाने-अनचाहे, ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलती रही. अगली कहानी *"जुलूस"* के लेखक कामेश्वर का नाम "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया है. आज देश में रोज़ किसी न किसी मुद्दे को लेकर आंदोलन शुरू हो जाते हैं, जुलूस निकलते हैं. छुटभैये नेता जुलूस में भीड़ जुटाने का ठेका लेते हैं. कई बार भीड़ में शामिल लोगों को मुद्दे का पता ही नहीं होता. *"काली माई का थान"* (डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव) ग्रामीण परिवेश की कहानी है. हालात अवश्य बदल रहे हैं लेकिन अगर कुछ लोगों को छोड़ दें तो अभी भी सीधे-सादे ग्रामीण लोग झाड़-फूंक, ओझा में विश्वास रखते हैं. अगली कहानी *"बनते-मिटते रिश्ते"* के लेखक डॉ. कुंवर प्रेमिल जाने-माने रचनाकार हैं. इस कहानी में भी गांव का माहौल मौजूद है. कई बार माने हुए रिश्ते सगे रिश्तों से अधिक प्रगाढ़ हो जाते हैं और वे "ख़ून" के रिश्ते बन जाते हैं. किसी एक की तकलीफ़ पूरे गांव की बन जाती है. मनोज कुमार "शिव" का नाम भी पाठकों के लिए नया है. *"गुरू दक्षिणा"* फौज़ में रहकर देश की सेवा करने का स्वप्न देखने वाले युवा जगिया की कहानी है. दारू पीने की लत से उसके पिता की मृत्यु हो गयी. जगिया को पढ़ाई छोड़ कर उस्ताद करतार से ट्रक ड्राइवरी सीखनी पड़ी. करतार उसे अपना पुत्र समझने लगा था. धीरे-धीरे जगिया पक्का ड्राइवर बन गया. इधर बीड़ी, सिगरेट, शराब के लगातार सेवन से करतार की तबियत ख़राब रहने लगी. लेकिन पुत्रवत जगिया के कहने पर उसने एक झटके में सब छोड़ दिया. माला वर्मा की *"सफ़ेद शॉल"* अंक की छठी कहानी है. लड़कियां ब्याह कर पराये घर चली जाती हैं एक नया घर बसाने. लेकिन मायके के संबंध छूट नहीं पाते, ख़ासकर माता-पिता के. अपनी पसंद की सफ़ेद शॉल ससुराल वापस जाते वक़्त पिता चुपचाप एक पैकेट बनाकर निम्मी को दे देते हैं, क्योंकि निम्मी को भी सफ़ेद रंग ही पसंद था. अगली कहानी *"दांव"* के लेखक महेंद्र सिंह राजसभा सचिवालय में संयुक्त निदेशक हैं. हम जब भारतीयों की विशेषता की बात करते हैं तो अक्सर अनेकता में एकता की बात करते हैं. कई मर्तबे अलग धर्म के मानने वाले पड़ोसियों के बीच प्रगाढ़ घरेलू संबंध बन जाते हैं. परंतु कभी-कभी धार्मिक गुटबंदी दो पंथ के अनुयायिओं में दुराव पैदा कर देती है और सारा भाईचारा छिन्न-भिन्न हो जाता है. आठवीं कहानी *"टापू"* (गोविंद सेन) एक भिन्न तेवर की कहानी है. जब आपका मन उदास हो तो कुछ अच्छा नहीं लगता. कभी-कभी आदमी खुद को एक टापू बना लेता है. समुद्र की अथाह जलराशि में नितांत अकेला निर्जन भूखंड. इसीलिए कहते हैं, "मन चंगा तो कठौती में गंगा." अंक की अंतिम कहानी *"रुतबा"* की लेखिका डॉ. हंसा दीप टोरंटो (कैनाडा) में हिंदी की लेक्चरार हैं. बच्चों के मन में भी बड़ों की तरह ही छुटपन में ही अपना रुतबा जताने का भाव आ जाता है. क्यों न हो, आज का युग ही प्रतिस्पर्धा का है!

●

समय का रथ अपनी रफ़्तार से चलता रहता है. हम पीछे जा रहे हैं, ठहरे हुए हैं या आगे जा रहे हैं यह आप तब तक नहीं जान पायेंगे जब तक आप पूर्वाग्रहों से ग्रसित रहेंगे, आंखों पर पट्टी बांधे रहेंगे. गिलास आधा खाली है या आधा भरा यह आपकी सोच पर निर्भर करता है. नकारात्मक सोच वालों के लिए गिलास आधा खाली है, वहीं सकारात्मक सोच वाले व्यक्तियों के लिए आधा भरा. हम सभी चाहते हैं कि देश समृद्ध हो, हर कोई सुखी हो. सदियों से चली आयी

समस्याओं से हम निजात पायें. आज़ादी के बाद के ७० सालों में लगभग ५०-५५ सालों तक कॉन्ग्रेस ने देश पर एकछत्र शासन किया है. चाहे कश्मीर की समस्या हो, नक्सल समस्या हो या बेरोज़गारी अथवा भ्रष्टाचार, इन सबके मूल में कॉन्ग्रेस की ग़लत नीतियां ही हैं. आज तथाकथित गांधी परिवार की तीसरी पीढ़ी के वारिस युवराज तत्पर हैं कि जोड़-तोड़कर किसी भी तरह प्रधानमंत्री की कुर्सी खाली हो और कूद के, आंख मारते हुए वे उस पर जा बैठें. इससे बड़ा मज़ाक हो ही नहीं सकता. चाहे राहुल गांधी हों या प्रधानमंत्री पद का कोई अन्य दावेदार सबसे पहले उसे जनता को बताना चाहिए कि उसके पास देश की सारी समस्याओं से पार पाने का क्या गुर है?

आजकल युवराज का मेकओवर करने का प्रयास चल रहा है. विदेश में जाकर युवराज पत्रकारों को इंटरव्यू देते हैं. साथ में उनके पिता के सलाहकार सैम पिटरोडा भी रहते हैं. कभी कहते हैं कि कॉन्ग्रेस में परिवारवाद है तो कौन-सी बड़ी बात हो गयी, ऐसा तो भारत के सभी राजनीतिक दलों में है. बड़े-बड़े व्यवसायी घरानों में भी ऐसा है. हाल के एक इंटरव्यू में इंदिरा गांधी की १९८४ में हत्या के बाद दिल्ली में हुए सिक्खों के कत्लेआम के बारे में उनसे जब पूछा गया तो बगले झांकने लगे. कहा गया कि तब राहुल बाबा १३-१४ साल के थे उन्हें उस समय की ज़्यादा कुछ जानकारी नहीं होगी! यदि युवराज से गर आपात्काल के बारे में कोई पूछे तो बड़ी आसानी से कहा जायेगा कि उस समय तो बाबा शायद पैदा ही नहीं हुए थे. इंदिरा गांधी और राजीव गांधी की हत्याएं कॉन्ग्रेस की अपनी ग़लत नीतियों के कारण हुईं. आज देश की ७० प्रतिशत जनसंख्या २५ से ४५ वर्ष के युवाओं की है. युवराज की तरह ही बहुत से युवाओं को आपात्काल के समय क्या-क्या हुआ इसकी जानकारी नहीं होगी. उन दिनों कॉन्ग्रेस द्वारा स्टील का एक काल-पात्र धरती के अंदर गाड़ा गया जिसमें ऐसी जानकारी रखी गयी जिसमें मात्र कॉन्ग्रेस को आज़ादी का सारा श्रेय दिया गया था. बाद में जब कॉन्ग्रेस की हार के बाद जनता पार्टी की सरकार बनी तो यह काल-पात्र निकालकर नष्ट किया गया.

विरासत में मिली समस्याओं से पार पाने के लिए किसी के पास कोई जादू की छड़ी नहीं है. हमेशा से यह कहा जाता रहा है कि जब तक आमूल-चूल परिवर्तन नहीं होगा स्थितियां नहीं बदलने वालीं. पुराने ढर्रे पर चलते हुए, थोड़ी कुछ कतर-ब्यौंत करके कुछ हासिल होने वाला नहीं. केंद्र की राजनीति में श्री नरेंद्र मोदी का प्रादुर्भाव यूं ही नहीं हो गया. दस साल तक गुजरात में किये विकास कार्यों और बदलाव की मेहनत उनके पीछे थी. हर कोई विकास के गुजरात मॉडेल की प्रशंसा करता था. और दूसरी ओर भ्रष्टाचार में आकंठ डूबी कॉन्ग्रेस. २०१४ मई में चुनाव के परिणाम आने तक किसी को कल्पना नहीं थी कि मोदी के नेतृत्व के कारण भाजपा को इतनी भारी सफलता मिलेगी. चुनाव के दौरान बहुतेरे तथाकथित मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों ने अनथक प्रयास किये कि मोदी सत्ता में न आयें. मोदी के रहते इनका अस्तित्व खतरे में होगा. देश के टुकड़े-टुकड़े गैंग, अवार्ड वापसी, पूना की फ़िल्म इंस्टीट्यूट आदि आंदोलनों के पीछे यही लोग हैं. लड़ाई विचारधारा की नहीं होनी चाहिए. यह मानी हुई बात है कि वामपंथ और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते. कश्मीर के आतंकवाद और उग्रवाद के लिए पाकिस्तान ज़िम्मेदार है. लेकिन पिछले ३० साल से अधिक, देश के एक बड़े भू-भाग में ज़ारी नक्सली गतिविधियों के लिए आप किसको ज़िम्मेदार ठहरायेंगे? नक्सलियों को खाद-पानी कहां से मिलता है? कुछ "शहरी नक्सलियों" से मिली जानकारी से हवाला दिया जा रहा है कि राजीव गांधी की तरह ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की हत्या की योजना थी. हाल ही में माओवादियों के एक सीनियर नेता पहाड़सिंह ने समर्पण किया है. उसने बाताया है कि बड़े-बड़े माओ नेताओं पर आंच नहीं आती वे छिपकर रहते हैं. मारे जाते हैं निरीह आदिवासी. उसने अब प्रण लिया है कि माओवाद को ख़तम करके ही दम लेगा. यह सरकार पर निर्भर है कि उसे कैसे इस्तेमाल किया जाये.

थोड़े दिन पहले कर्नाटक में हुए चुनाव के परिणामों के बाद दो धुर विरोधी दल मिलकर सरकार बनाने में सफल हो गये. सारा विपक्ष एक साथ, एक मंच पर दिखाई दिया. इस गठबंधन का कौन लीडर होगा कहना बहुत मुश्किल है क्योंकि हर कोई दावेदार है. पाकिस्तान में हुए चुनाव में भी बहुत उलट-फेर हुआ. क्रिकेटर इमरान खान ने भी जोड़-तोड़कर सरकार बनायी. भारत पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा अभी कुछ कहना मुश्किल है.

इस साल पूरे देश में बरसात ने सब तरफ़ कहर बरपाया. ख़ासतौर पर केरल में. सामान्यतः मानसून की शुरूआत १ जून के आस-पास केरल से होती है और क्रमशः मानसून उत्तर की ओर बढ़ता है. केरल जिसे "गॉड्स ओन कन्ट्री" कहा जाता है, में अगस्त में हुई बरसात ने पिछले सभी रिकॉर्ड तोड़ दिये. देश के कोने-कोने से संस्थाओं और लोगों ने भरपूर सहायता सामग्री पहुंचायी.

●

देश के उच्चतम न्यायालय ने सेक्शन ३७७ को संशोधित किया है. जिस दिन निर्णय आया ख़ुशियां मनायी गयीं, मिठाइयां बांटी गयीं. समलैंगिक संबंधों पर क़ानूनी मोहर लग गयी. अगले क़दम में अपने पालतू पशुओं से संबंध बनाने की मांग भी उठायी जा सकती है. हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एड्स की बीमारी कहां से आयी थी?

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' निरंतर मिल रही है. इसके लिए आभार. इस ताज़ा अंक (जन.-मार्च '१८) में बड़ी अच्छी-अच्छी कहानियां ली गयी हैं. ख़ासतौर पर सुशांत सुप्रिय की कहानी 'इंडियन काफ्का' और सिद्धेश की कहानी 'अहसान फ़रामोश' और सुषमा मुनींद्र की कहानी 'सरलता' वक़्त की नब्ज को पकड़नेवाली कहानियां लगीं, उन्हें बधाई. ग़ज़लों में केशव शरण की ग़ज़लें पसंद आयीं.

'कथाबिंब' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संपादकीय के माध्यम से समसामयिक विषयों पर टिप्पणी के साथ-साथ अंक की कहानियों की संक्षिप्त चर्चा भी की जाती है, जो अन्य कहीं नहीं होती. यह काम थोड़ा मुश्किल भी है कि तमाम कहानियों को पढ़कर उन पर टिप्पणी करना समय को लगाना है, हिंदी में महान संपादकों की परंपरा नहीं रही है. कहीं-कहीं तो संपादकीय लिखने की उलझन ही नहीं पाली है संपादकों ने, रचनाएं आ गयीं नाम देख लिया, पेज़ लगा दिया बस...इससे पता चलता है कि 'कथाबिंब' बहुत मुश्किल और मेहनत से निकलती है. हर पृष्ठ पर लगन की ख़ुशबू का एहसास पता होता है.

''नहीं हैं आमादा, इस सफ़र पर मगर हम, सफ़र समुंदर का और कछुए की पुश्त पर हम.''

मित्र शायर अकबर हुसैन 'अकबर' का यह शेर ऐसी पत्र-पत्रिकाओं पर सटीक बैठता है.

– डॉ. सेराज ख़ान बातिश

३ बी, बंगाली शाह वारसी लेन, दूसरा तल्ला, फ्लैट नं. ४, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३.

मो. : ९३३९८४७१९८

▶▶ एक अर्से बाद, बल्कि कई वर्षों बाद मैं आपको यह ख़त लिखने का सुख प्राप्त कर रहा हूं. आपकी सम्मानित पत्रिका 'कथाबिंब' नियमित निकलकर लोगों/पाठकों तक पहुंच रही है, यह बड़ी बात और सराहनीय है. अंक १४१ (जन.-मार्च २०१८) का ख़ूबसूरत अंक मेरे सामने है. उत्कृष्ट संग्रहणीय प्रत्येक अंक के लिए आभार.

– रमेशचंद्र श्रीवास्तव

एकता नगर पंचवटी, निकट- पी. जी. आई. साहू कॉलोनी, कल्ली पश्चिम, लखनऊ-२२६३०१.

मो. : ९४१५४९१७९२

▶▶ साहित्य जगत में अपना एक विशेष स्थान रखनी वाली 'कथाबिंब' पत्रिका का जनवरी-मार्च २०१८ अंक पढ़ने को मिला. नीतू सुदीप्ति 'नित्या' की कहानी 'नाही है कोई ठिकाना' दिलो दिमाग़ पर छा गयी. किस तरह मां बाप स्वार्थ में अंधे होकर अपनी कुंवारी बेटी को सरोगेट मदर बनाकर अपनी इच्छाओं को पंख लगाते हैं. विषय नया है. इस विषय पर पहली कहानी पढ़ने को मिली. लेखिका को बधाई. सुशांत सुप्रिय की कहानी 'इंडियन काफ्का' पाठक को अपने साथ बांधकर चलती है. अंत तक पाठक इस कहानी को पढ़े बग़ैर नहीं छोड़ता. 'अहसान फ़रामोश' कहानी हमारे उन मूल्यों की याद दिलाती है. जिनके तहत इंसान की अच्छाई उसे मरने पर भी मरने नहीं देती. कहानी मन को छू गयी. सभी लघुकथाएं पाठक पर प्रभाव छोड़ती हैं. सुंदर अंक के लिए संपादन मंडल को बधाई.

– राधेश्याम भारतीय

नसीब विहार कॉलोनी, घरौंडा, करनाल-१३२११४.

मो. ९३१५३८२२३६

▶▶ 'कथाबिंब' का जन.-मार्च '१८ अंक प्राप्त हुआ. याद का शुक्रिया. हिंदी सेवा हेतु जीवन गौरव सम्मान प्राप्ति की हार्दिक बधाई. अंक में 'कुछ कही-कुछ अनकही' सोच को झकझोरती है. कहानियां सभी अच्छी हैं परंतु 'नाही है कोई ठिकाना' सबसे अच्छी है. कविताओं में केशव शरण की ग़ज़लों के अलावा... ख़ैर 'सागर-सीपी' में अशोक भाटिया से मिलना सुखद लगा औरतनामा

महत्वपूर्ण है. उत्कृष्ट अंक हेतु 'कथाबिंब' परिवार को बधाई!

- *राजेंद्र तिवारी*
'तपोवन' ३८-बी, गोविंद नगर,
कानपुर-२०८००६

⏩ 'कथाबिंब' का नवीन जनवरी-मार्च २०१८ का अंक मिला. धन्यवाद.

प्रस्तुत अंक में सुषमा मुनींद्र की कहानी आपके शब्दों में बहुत सामान्य कथ्य — 'सरलता' बहुत पसंद आयी. भले ही प्रथमदृष्टया कहानी सामान्य कथ्य की हो, किंतु इसके अंदर जबर्दस्त अंडरकरेंट्स (अंतर्धाराएं) निहित हैं. कहानी का दूरगामी प्रभाव पड़ता है. यह मनोवैज्ञानिक कथा है.

नीतू सुदीप्ति की कहानी 'नहीं है कोई ठिकाना' उत्तम है, तथापि अनावश्यक विस्तार भी है. लेखिका ने एक नयी बात पर उंगली रखी है. 'तालाब की मछली' भी श्रेष्ठ कथा है.

'वातायन' स्तंभ के अंतर्गत अक्षय जैन ने जो सी. पी. एम के सीताराम येचुरी के छद्म साम्यवाद की और कांग्रेसियों, सोनिया गांधी आदि की ख़बर ली है उससे मन ख़ुश हो गया. यह परिवार तो माने बैठा है कि भारत पर शासन का पट्टा अल्लाह मियां ने उसी के नाम लिख दिया है. इटली में जन्मे पले, इंग्लैंड में पढ़े भारत की संस्कृति सभ्यता से अनजान लोग यहां शासन करने के लिए बेचैन हैं.

संपादकीय सबसे पहले पढ़ता हूं. वह चिंतन की प्रभूत सामग्री देता है, झकझोरता भी है.

– चंद्रमोहन प्रधान
'ज्ञान-कला केंद्र', आमगोला,
मुजफ्फरपुर-८४२००२. मो. : ८७५७०९०७५१

⏩ पत्रिका का जनवरी-मार्च '१८ अंक मिला. 'नहीं है कोई ठिकाना' कहानी व्यक्ति को लालच में नहीं फंसने का संदेश देती है. कहानी में सरोगेट मदर बनने का चित्रण है जिसमें एक लड़की प्रसव पीड़ा सहने के बाद खाली रहती है. 'सरलता' कहानी में लोग अमीर-ग़रीब की श्रेणियों में बंटे हैं. एकल बच्चे को अपने भाई/बहन की ज़रूरत होती है. घर नहीं तो बच्चा अपना साथी बाहर ढूंढ़ता है. 'अहसान फ़रामोश' कहानी में बहुत से लोग अपने वृद्ध और असहाय आदमी के कामों से बचते हैं. लेकिन उसके माल पर निग़ाह रहती है. 'तालाब की मछली' में एक महिला डॉक्टर मरीजों को ठीक करना अपना कर्तव्य समझती है इसके लिए वह मंत्री की विज़िट को भी अनसुना कर देती है. इधर मंत्री भी उसकी कर्तव्य भावना से ख़ुश होकर कहते हैं 'तालाब की मछली' एक-सी नहीं होती.

– *दिलीप कुमार गुप्ता*
११, छोटी वमनपुरी,
बरेली-२४३००१.
मो. : ८२७३५७९९९९

⏩ 'कथाबिंब' का अंक मिला. बहुत आभार. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आप देश, विश्व, समाज आदि की वर्तमान स्थितियों पर कितना कुछ कह जाते हैं. कवि रमेश प्रसून का गीत अच्छा है. स्थायी स्तंभ सब पठनीय.

– चंद्रसेन 'विराट'
१२१, बैकुंठधाम कॉलोनी,
आनंद बाज़ार के पीछे, इंदौर (म. प्र.)-४५२०१८.

⏩ 'कथाबिंब' में छपी 'नाही है कोई ठिकाना' कहानी पर लगभग १०-१५ फ़ोन आये, फ़ेसबुक पर भी पाठकों की अच्छी प्रतिक्रियाएं मिलीं. आपकी पत्रिका से मुझे पहचान मिल रही है. यह मेरे लिए ख़ुशी की बात है. बहुत लेखकों का कहना था कि इतनी बड़ी पत्रिका में सारे सीनियर को पछाड़ कर तुम्हारी कहानी पहले नंबर पर छपी है, यह बहुत बड़ी बात है तुम्हारे लेखन के लिए.

जन.-मार्च '१८ अंक में सबसे अच्छी कहानी 'तालाब की मछली' (ताराचंद मकसाने) लगी है. लघुकथाओं

में 'गांव की सुरक्षा' (अंकुश्री) प्रभावी लगी. फ़ारुख हुसैन ग़ज़ल अच्छी लिखते हैं. पत्रिका में सबसे पहले मैं आपका संपादकीय पढ़ती हूं. क्योंकि पूरे भारत की मुख्य ख़बरें दो पेज़ में समायी रहती हैं, बिना लाग-लपेट के. साथ में बहुत सारी जानकारी भी मिलती है. 'जीवन गौरव पुरस्कार' मिलने पर अरविंद जी को ख़ूब-ख़ूब बधाई !

– नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

श्री भगवान प्रसाद, कोयला दुकान, राजा बाज़ार, कटेया रोड, बिहिया-८०२११५२, जि.-भोजपुर (बिहार)

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१८ अंक मिला. धन्यवाद. आप ३८-३९ वर्षों से पत्रिका के रूप में एक मशाल जलाये हुए हैं, यह अद्भुत है. आपकी निष्ठा और प्रतिबद्धता को सलाम! अंक अच्छे निकल रहे हैं. कहानियां सभी पठनीय हैं. सुशांत सुप्रिय और सुषमा मुनींद्र की कहानियां ज़्यादा ध्यान खींचती हैं. आशा है स्वस्थ-सानंद हैं.

– जयनंदन

ए-४/६ चंद्रबली उद्यान, रोड नं.-१, काशीडीह, साकची, जमशेदपुर-८३१००१.

▶▶ कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च २०१८ अंक मिला, जो कई नयी जानकारियों से परिपूर्ण है. स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आपको समय पर पत्र न लिख सका, क्षमा! पत्रिका के माध्यम से ज्ञात हुआ कि 'महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी' द्वारा आपको 'जीवन गौरव सम्मान' प्रदान किया गया है. अरविंद जी, वास्तव में जो लेखक, संपादक दीर्घकाल तक साहित्य की सेवा करते हुए अपना ख़ून पसीना एक करता है, वह असल में ऐसे सम्मान का हक़दार होता ही है. इसके लिए आपको कोटिश: बधाई. इसके साथ ही लेखिका मालती जोशी को 'पद्मश्री' मिलने पर अनेक शुभकामनाएं. अंक की पहली कहानी 'नाही कोई ठिकाना' (लेखिका नीतू सुदीप्ति 'नित्या') वास्तव में दिल को छू लेने वाली कहानी है. कहानी की नायिका चटोरी का दर्द, उसकी आंतरिक पीड़ा उसके एहसास को जिस मनोभाव के साथ नीतू जी ने उजागर किया है, वह अविस्मरणीय है. ऐसा कदापि नहीं है कि औरत होना कोई दीन-हीन बात है, लेकिन एक कुंआरी लड़की के सरोगेट मदर बनने के वृतांत को इतनी गहराई से अगर नीतू जी ने सोचा, समझा और इसे वाणी दी, उस पीड़ा का अनुभव एक औरत ही कर सकती है. निश्चित ही कहानी की भाषा भले ही भोजपुरी हिंदी मिश्रित हो, लेकिन अपनी छोटी बहनों को सरोगेट मां बनने से बचाना और उसके पिता केसर और मां लाजवंती का ग़रीबी की दहलीज से ऊपर उठकर लाखों कमाना एक बिज़नेस बन चुका है. बिज़नेस की आड़ में अपनी बेटियों को सरोगेट मदर बनाने का लालच एक निर्लज्ज व खोखले समाज का दंभ ही होता है. इसके लिए नीतू जी को लख-लख. बधाइयां!

सुषमा मुनींद्र की कहानी 'सरलता', सुशांत सुप्रिय की कहानी 'इंडियन काफ्का', सिद्धेश की कहानी 'अहसान फ़रामोश', ताराचंद मकसाने की कहानी 'तालाब की मछली', राजगोपाल सिंह की कहानी 'प्रारब्ध' भी अच्छी हैं.

लघुकथा पर डॉ. अशोक भाटिया से डॉ. राधेश्याम भारतीय का साक्षात्कार सारगर्भित बन पड़ा है. ऐसे साक्षात्कार 'कथाबिंब' में दिये ही जाने चाहिए ताकि नयी पीढ़ी इनसे कुछ सीख सके. हमेशा की तरह डॉ. राजम पिल्लै ने शब्दों और व्याकरण से 'रुक्मिणी देवी अरुंडेल' के व्यक्तित्व का जो ख़ाका खींचा है वह अद्भुत है. एक ब्राह्मण कन्या होने के बावजूद ब्रिटिश विद्वान डॉ. जार्ज अरुंडेल से विवाह करने और फिर देवदासियों को उनकी जड़वत्ता से निकालकर भरतनाट्यम को देश दुनिया में स्थापित करना रुक्मिणी देवी की संघर्ष गाथा का अद्वितीय प्रमाण है. इसके बाद अगर उन्हें राज्यसभा में दो बार मनोनीत कर 'पद्मभूषण' अलंकरण प्रदान किया गया और अनेक सम्मान दिये गये वह तो जायज ही था.

'पुस्तक समीक्षा' में अनुपम श्रीवास्तव 'निरुपम' के कविता संग्रह पर रामगोपाल रैकवार की समीक्षा समसामयिक बन पड़ी है. कविताएं, ग़ज़लें और लघुकथाएं भी ठीक-ठाक हैं.

– विक्रम जनबंधु

प्रेस पुलिस लहर,
क्वा. १७/ए, सड़क-एवेन्यु-बी,सेक्टर-१,
भिलाईनगर-४९०००१ (छ. ग.)
मो. : ९७५५३५२४८६

नदी और मैं

डॉ. रमाकांत शर्मा

नदी जब अपने उद्‌गम स्थल से निकलती होगी तो पता नहीं क्या सोचती होगी. क्या यह ख़्याल भी उसके मन में आता होगा कि उसे कितना लंबा सफ़र तय करना है, कहां-कहां से गुज़रना है, किन अनुभवों से दो-चार होना है, किन परिस्थितियों से जूझना है और अंतत: कहां और किस सागर की गोद में समा जाना है. यह भी हो सकता है, वह कुछ भी नहीं सोचती हो, ख़ुद को अपने प्रवाह के हवाले छोड़ देती हो.

मुझे लगता है, मैं भी एक नदी हूं. अपना उद्‌गम मुझे याद नहीं पर, आज जब ज़िंदगी के नब्बे साल बाद पीछे मुड़ कर देखती हूं तो लगता है सब कुछ नदी की धारा-सा ही तो बहता रहा है. कभी गोमुख से निकलती गंगा को देखा है? उछाह लेता गंगा का दूधिया निर्मल जल. हिमालय की गोद में खेलता खिलखिलाता आगे बढ़ता जल. बच्चों की सी उमंग लिये रहस्यों से पर्दा उठाने और एक-एक पल को जी लेने की आतुरता लिये बहता जाता जल. सच, नदी का पानी इतराता हुआ आसपास की दुनिया को अचरज से निहारता आगे की यात्रा के लिए मचलता–सा चला जा रहा होता है. सब कुछ कितना अद्भुत, कितना स्वर्गिक.

मां की गोद में मैं भी ऐसे ही खिलखिलायी होउंगी, मचली होउंगी. जब होश संभाला, अपने आसपास की दुनिया को अचरज से देखती थी मैं. नीला आसमान, चमकते चांद-सितारे, दिन उगाता फिर उसे अपने साथ ले जाता सूरज. हैरत होती पेड़-पौधों और उन पर लटकते फलों को देख कर, रंगबिरंगे फूलों पर मंडराती रंगबिरंगी तितलियों और जामुनी भंवरे को मंडराते देख कर, अलग-अलग तरह के पक्षियों को ऊंची उड़ान भरते देख कर, पहाड़ों, रास्तों जगमगाती बिजलियों, खेल-खिलौनों, जानवरों और तमाम तरह की चीज़ों को देख कर.

जब आसमान पर बादल घुमड़ते और रिमझिम पानी बरसता तो दुनिया और भी ख़ूबसूरत लगने लगती. मां के मना करने पर भी मैं छत पर निकल जाती और उन फुहारों का मज़ा लेती जो तन ही नहीं मन को भी भिगो देतीं. मां की डांट और फिर बदन पोंछते उसके हाथों की छुअन अलौकिक लगती. मैं उनकी गुदगुदी कमर को पकड़ कर लटक जाती. 'चल, छोड़ मुझे' कह कर वह प्यार से झिड़क देती और फिर बैठा देती उस बरामदे में जिसकी छत टीन की बनी थी. मैं टीन से गिर रही बूंदों को गिन भी नहीं पाती कि वह मेरे नन्हें हाथों में थमा जाती चटपटे अचार की फांक के साथ एक लाल सिका परांठा. टीन पर बारिश की बूंदों की टपाटप के संगीत के साथ वह अचार और परांठा जिस स्वाद से भर देता उसकी तुलना चाहूं भी तो अब किसी चीज़ से नहीं कर सकती.

बर्फ़ीली पहाड़ियों से उतरती नदी ने भी देखा होगा आसमान, सूरज, चांद, तारों, पेड़ों, फूलों, पक्षियों और रंगबिरंगी तितलियों को. आसमान से बरसती बारिश में वह भी नहाई होगी और मस्ती में उछली-कूदी होगी. किसने रोका होगा उसे बारिश में किनारा तोड़ कर बाहर निकल जाने से? नदी तो बस नदी है, इस सबका आनंद लेती हुई वह खिलखिलाते हुए आगे निकल गयी होगी. उसे पता चल गया होगा कि जैसे-जैसे वह आगे बढ़ेगी, उसे नयी-नयी चीज़ें देखने को मिलेंगी. जिज्ञासा भरी लहरें और अचरज भरी तरंगे लिये उसने अपना अनजान सफ़र ज़ारी रखा होगा.

ज़िंदगी का सफ़र भी कितना रहस्यमय और कितना अनजाना-सा शुरू होता है. नदी की तरह लहराता-बलखाता

अनजाना सफ़र. कुछ पता नहीं होता कहां-कहां से गुज़रना है और कहां जाना है. बस, चलते जाना है. दुनिया के नज़ारों को देखते हुए. कुछ भी अपने हाथ में नहीं, ना शुरुआत ना अंत. हर दिन एक नया दिन, धीरे-धीरे नये रहस्यों की परत हटाता, नयी घटनाओं में डूबता-उतराता नया दिन.

बस्ता लेकर स्कूल जाना और मां के बिना लगभग सारा दिन वहां बिताना बड़ा मुश्किल काम था. मां सुबह-सुबह उठा देती. नहलाती-धुलाती. स्कूल की यूनिफ़ॉर्म पहनाती. चोटी बनाती तो मैं बहुत रोती, थोड़ा बालों के खिंचाव से और ज़्यादा स्कूल जाने के ख़्याल से. मुझे अपने से अलग करके उन अनजान टीचरों और बच्चों के बीच भेजती मां कितनी निर्मम लगती. मेरे ज़रा सा रोते ही परेशान हो जाने वाले, मुझे मनाने और टॉफ़ी ला देने का वायदा करने के लिए भागे चले आने वाले बाबूजी, पता नहीं स्कूल जाने से बचने के लिए मेरे आंसुओं की इस झड़ी से क्यों विचलित नहीं हो पाते थे. उन्हें तो जैसे कुछ मतलब ही नहीं था. मां के इस अत्याचार से वे आंखें फेरे रहते. पता है, मैं कितना दु:खी हो जाती थी.

मेरे जैसे कितने ही बच्चे स्कूल आने के लिए विवश थे. हमारी उम्र और संवेदनाएं ही शायद हमें एक-दूसरे के पास ले आयी थीं. कितनी अजीब बात थी, धीरे-धीरे स्कूल हमें अच्छा लगने लगा था. रोज़ाना अपने दोस्तों से मिलने के लिए, उनसे बातें करने, अपने छोटे-छोटे सुख-दु:ख बांटने और उनसे लड़ने-झगड़ने के लिए स्कूल जाना ज़िंदगी का ज़रूरी हिस्सा बनता गया था.

नदी को भी बुरा तो ज़रूर लगता होगा अनजाने–अनचाहे, ऊबड़-खाबड़ रास्तों, बड़े-छोटे पत्थरों, तीखी-नुकीली झाड़ियों और किस्म-किस्म की चीज़ों से टकरा कर चलते हुए. पर, विकल्प के अभाव में उसे उनसे ही रास्ता बनाना होता है. चलती जाती है वह इन छोटे-मोटे अवरोधों की परवाह किये बिना. मंजिल से अनजान नदी रास्ते का भरपूर आनंद लेती हुई आगे बढ़ती जाती है.

यह रास्ता ही तो जीवन है, मंजिल तो जीवन का अंत ले आती है. इस रास्ते का आनंद लेना ही ज़िंदगी को ज़िंदगी बनाता है. छोटे-बड़े सुख-दु:ख, रूठने-मनने के नाटक, ख़ुद की और दूसरों की नादानियां, शरारतें और अनगिनत प्रसंगों की खट्टी-मीठी यादें इस रास्ते को सुंदर और सुगम बनाती हैं और ज़िंदगी का प्रवाह नदी के प्रवाह की तरह बेपरवाही से आगे बढ़ता जाता है. मेरी ज़िंदगी भी तो ऐसी ही बेपरवाही से आगे बढ़ती जा रही थी. मां-बाप की इकलौती संतान होने के कारण उनके प्यार के सागर में डूबी रहती और मन की हर मुराद पूरी होने का अथाह सुख मिलता रहता.

कब पीछे छूट जाता है बचपन, पता ही नहीं चलता. ठीक वैसे ही जैसे कब उतर आती है नदी मैदानों में. छूट जाती हैं गुड़ियां, कौड़ियां, सीपियां, रेत के घर बनाना, गुट्टे, सतौलिया, छुपम-छुपाई और पहल-दूज खेलना. बहुत सी सखी-सहेलियां भी पीछे छूट जाती हैं. उन छोटे-छोटे

एम. ए. अर्थशास्त्र, एम. कॉम, एल. एल. बी.,
सीएआइआइबी, पीएच. डी. (कॉमर्स).

पिछले लगभग ४० वर्ष से लेखन कार्य से जुड़े, लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां, व्यंग्य लेख, कविताएं, लेख प्रकाशित; दो कहानी संग्रह प्रकाशित – १. 'नया लिहाफ़', २. 'अचानक कुछ नहीं होता'; तीसरा कहानी संग्रह "भीतर दबा सच" प्रकाशनाधीन; विश्व की कई श्रेष्ठ कहानियों का हिंदी में अनुवाद; रेडियो पर नियमित रूप से कहानियों का प्रसारण; महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी प्रथम पुरस्कार; अखिल भारतीय स्तर पर कई कहानियां पुरस्कृत; बैंकिंग विषयों पर हिंदी में संदर्भ साहित्य सृजित करने के लिए महामहिम राष्ट्रपति जी के हाथों पुरस्कृत; बैंकिंग/अर्थशास्त्र/अभिप्रेरण और राजभाषा आदि विषयों पर बैंकों तथा सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी शिक्षण/प्रशिक्षण संस्थानों में व्याख्यान; जेजेटी विश्वविद्यालय, राजस्थान में पीएच. डी. (वाणिज्य) के गाइड/सुपरवाइज़र के रूप में पंजीकृत; भारतीय रिज़र्व बैंक से ज़नरल मैनज़र के रूप में सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन.

सपनों के रंग और स्वरूप भी बदल जाते हैं जो सोते-जागते आंखों में भरे रहते थे. नटखटपना और उच्छृंखलता भी न जाने कहां खो जाते हैं और मैदानों में बहती नदी–सी शांति और गंभीरता पूरे वज़ूद पर छा जाती है. नदी भी सीपियों और शंखों जैसे अपने खिलौने किनारों पर छोड़कर आगे बढ़ती है, उसकी ज़िंदगी भी बदलने जो लगती है. सुहावने प्राकृतिक दृश्यों के आनंद में सराबोर नदी को अचानक दिखने लगते हैं गांव, क़स्बे, मैले घाट, उसके पानी में गिरते गंदे नाले, कपड़े धोते-नहाते लोग, छाती पर बोझ बनीं नावें और न जाने कहां से अपने भीतर पनप आये सांप, कछुए, मगरमच्छ, छोटी मछलियों को खा जाने वाली बड़ी मछलियां, बड़े-बड़े जाल और पार्थिव शरीर. सफ़र का मज़ा लेती चल रही नदी का कम होता उछाह आसानी से नज़र आने लगता है और वह भय से सिकुड़ने लगती है.

काश, जीवन नदी के शुरुआती निर्मल जल की तरह सतत बहता रहता. न नदी की निर्मलता ख़त्म होती और न ही जीवन की. बचपन में ज़िंदगी कितनी अच्छी लगती थी. उस समय लगता था, जैसे-जैसे बड़े होंगे सपने साकार होते जायेंगे. हर जन्मदिन की बेताबी से प्रतीक्षा रहती. कई बार मैंने सोचा, मेरा जन्मदिन जल्दी-जल्दी क्यों नहीं आ जाता. ये जन्मदिन भी न जाने कब शैशव को पीछे छोड़ते हुए, किशोरावस्था से गुज़रते हुए वयस्कों की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं, सच पता ही नहीं चलता.

मां बात-बात पर टोकने और कहने लगी थी — 'अब तू बड़ी हो गयी है, बचपना छोड़. यहां, मत बैठ, वहां मत खड़ी हो, ये पहन, वो मत पहन, ये खा, वो मत खा, पढ़ने में मन लगा, कॉलेज़ से सीधे घर आ, यह और यह चीज़ बनाना सीख ले ससुराल में काम आयेगा.' नदी को भी क्या ससुराल जाना होता है? फिर क्यों उस पर भी ऐसी ही बंदिशें लगने लगती हैं. उसके प्रवाह को जबरन मोड़ दिया जाता है, यहां-वहां बांध बना कर रोक दिया जाता है, उसके किनारों को सीमित कर दिया जाता है.

घर में मेरी शादी की बातें चलने लगी थीं. मैं अंदर ही अंदर ख़ुश होती, पर प्रकट में कहती ऐसी भी क्या जल्दी है मां, क्यों मुझे घर से इतनी जल्दी निकालना चाहती हो. अभी मैं और आगे पढ़ना चाहती हूं, अपना कैरियर बनाना चाहती हूं. पर, मां थी कि हंस कर टाल जाती. कहती – 'मैं भी तो अपना घर छोड़कर तेरे बाबूजी के घर आयी थी. औरत का घर उसके पति का घर ही होता है. कुछ ही दिनों में यह पराया घर इतना अपना हो जाता है कि मां-बाप के घर की याद भी नहीं आती. तेरे लिए तो मैं राजकुमार ढूंढ़ कर लाऊंगी. घोड़ी पर बैठ कर आयेगा और तुझे अपने ख़ुद के घर ले जायेगा.'

मां की बातें अटपटी-सी लगतीं. जिस घर में बचपन और किशोरावस्था बीते हों, जवानी ने पहली अंगड़ाई ली हो, वह घर भला कैसे पराया लग सकता है? इस सोच के साथ मन में सपने भी पलने लगते, दुल्हन बनने के, घोड़ी पर चढ़कर राजकुमार के आने और फिर अपने ख़ुद के घर जाने के.

फिर वैसा ही हुआ, मैं दुल्हन बनी, राजकुमार घोड़ी पर बैठ कर आया और मुझे अपने घर ले गया. शादी के बाद एक औरत की ज़िंदगी कितनी बदल जाती है. नये घर, नये लोग, नयी संस्कृति और नये माहौल से उसे तादात्म्य बैठाना होता है. पति का साथ जहां ज़िंदगी को नये अर्थ देता है और उसे और भी ख़ुशनुमा बना देता है, वहीं बहुत से लोगों की अपेक्षाओं और घर-गृहस्थी का बोझ अनायास उससे उसका खिलंदड़ापन छीन लेता है.

भगवान ने स्त्री को ही नौ माह तक अपने गर्भ में शिशु को विकसित करने, रखने और संसार में लाने की शक्ति दी है. जब मुझे पता चला कि मैं मां बनने वाली हूं तो मेरा रोम-रोम नाच उठा था. इस ख़बर से मेरे पति और घर के सारे लोग भी ख़ुशी से भर उठे थे. 'देख लेना, पोता ही होगा. हमारे घर में पहला बच्चा लड़का ही होता आया है'- मेरी सास यह कहते-कहते कल्पना लोक में ही अपनी गोद में अपना पोता खिलाने लगती. ख़ुशी उसके चेहरे से टपकी पड़ती थी. उसने तो अपने पोते का नाम भी सोच लिया था – लक्ष्य.

मैंने जब पहली बार अपनी बगल में अपनी बेटी को सोते देखा तो उसके रुई के गोले जैसे नर्म शरीर को अपने अंक में भर लिया. सृजन का आनंद मेरी नस-नस में दौड़ रहा था. मैंने उसे कितनी बार चूमा मुझे याद नहीं. मैं बार-बार उसे देखती और सोचती — 'ओह, इसे मैंने जन्म दिया है, यह मेरे ख़ून, मांस और मज्जा से बनी है, मेरे शरीर के भीतर नौ माह तक रही है.' मैं ऊपर से नीचे तक रोमांच से भर उठती. पर, पता नहीं ऐसा रोमांच मेरे घर के लोगों में क्यों नहीं था. मैंने उन्हें बड़ी मायूसी से कहते सुना था —

'हां, लड़की हुई है.' मैंने सोचा था सोम — मेरे पति भी पहली बार पिता बन कर वैसा ही कुछ महसूस कर रहे होंगे जैसा मैं पहली बार मां बन कर महसूस कर रही थी. पर, बेटी को गोद में लेते समय उनके चेहरे के भाव पढ़ कर मैं हैरान रह जाती.

एक दिन तो उन्होंने कह ही दिया — 'काश, आज मेरी गोद में बेटी की जगह बेटा होता तो कितना अच्छा होता, पोता खिलाने का मां का सपना भी पूरा हो जाता.'

मैंने पूछा था – 'क्या तुम ख़ुश नहीं हो?'

'ख़ुश तो हूं मेरी अपनी बेटी है, पर बेटे की तो बात ही कुछ और होती है' — उन्होंने बिना मेरी तरफ़ देखे कहा था और उसे पालने में लिटा कर तुरंत कमरे से बाहर चले गये थे.

मैं तो अपने मां-बाबूजी की इकलौती बेटी थी. मैंने कभी भी और ज़रा भी यह महसूस नहीं किया था कि वे मेरे जन्म से दु:खी थे. फिर, ये लोग ममोली-सी बिटिया पाकर ख़ुश होने के बजाय उदास क्यों हो रहे थे.

जब मेरी दूसरी संतान भी बेटी हुई तो घर में जैसे मातम छा गया. चांद सी ख़ूबसूरत बिटिया पाकर ख़ुश होने के बजाय घर में एक अजीब सी निस्तब्धता छा जाना मुझे भीतर तक कचोट गया था. तीसरी बेटी होने के बाद तो मेरे साथ सभी का व्यवहार बदल गया. सब मुझे अपराधी महसूस कराते. मुझे बाक़ी लोगों की तो इतनी परवाह नहीं थी, पर सोम का व्यवहार मेरी समझ से परे था. वे अपने ही अंश से यथासंभव दूर रहने का प्रयास करते. कुछ क्षणों के लिए उनकी आंखों में बच्चियों के लिए प्यार दिखाई देता और फिर भाप–सा तिरोहित हो जाता. मैं कसमसा कर रह जाती. घर में मेरी इज़्ज़त सिर्फ़ और सिर्फ़ इसलिए बित्ते भर की रह गयी थी कि मैं बेटों की नहीं बेटियों की मां थी. मेरा मन बहुत बेचैन और अशांत रहने लगा. मन में हमेशा कुछ उबलता–सा रहता, जिसे मैं शांत करने की कोशिश करती रहती.

हमारे देश में तो स्त्रियों को देवी का दर्ज़ा दिया गया है, फिर यह सब क्यों? सोचती हूं नदी भी तो स्त्रीलिंग है, इसलिए स्त्री और नदी का भाग्य शायद एक ही क़लम से लिखा गया है. दोनों को देवी का दर्ज़ा हासिल है, पर दोनों ही प्रताड़ना झेलती हैं. देवी की तरह पूजी जाने वाली नदी में हर तरह का कचरा डाल कर उसे उसकी असली औक़ात बताई जाती है तो स्त्री को अपमान, ज़िल्लत, कमतरी और बेबसी के एहसास से नवाजा जाता है.

शांत बहती नदी कभी-कभी उबलने लगती है, फट पड़ती है. जिस तरह से उसके साथ खिलवाड़ किया जाता है, वह सह नहीं पाती और किनारे तोड़ कर सब कुछ तहस-नहस कर अपना बदला लेने पर उतारू हो जाती है. मैं भी तब नदी की तरह फट पड़ी थी, जब सिर्फ़ इसलिए मेरे पति की दूसरी शादी की बात की जाने लगी थी कि परिवार के लिए एक अदद वारिस मिल जाये. सोम की चुप्पी ने मुझे भीतर तक तोड़ दिया था. हमेशा शांत रहने वाली मैं बिफर पड़ी थी, तलाक का निर्णय लेते समय मेरा दिल ज़रा भी नहीं कांपा था. पुत्र की लालसा में मेरे इस क़दम का दबे स्वर में स्वागत ही हुआ था. बेटियों को अपने साथ रखने के मेरे अडिग फ़ैसले का भी ज़्यादा विरोध नहीं हुआ. उन मासूम अनचाही बच्चियों से किसी को मोह भी क्या होता. उनके पिता ने थोड़ी आपत्ति ज़रूर दर्ज की थी, पर अपनी मां के समझाने पर मान गये थे.

मैं अपनी बेटियों को लेकर मां के घर चली आयी थी. मां-बाबूजी इस विषम स्थिति से सहज तो नहीं थे, पर वे मुझे सहारा देने से पीछे भी नहीं हटे. मैंने भी सोच लिया था, मैं अपनी बच्चियों को अपने दम पर पालूंगी. उनकी परवरिश ऐसे करूंगी कि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें और गर्व का कारण बन सकें. नदी तो अनजान लोगों की परवरिश में भी हाथ बंटाती है, उन्हें पानी देती है, उनके खेत सींचती है, उन्हें मोती जैसे अनमोल रत्न देती है और असंख्य लोगों को तरह-तरह के रोज़गार देती है. नदी सिर्फ़ देने और देने में विश्वास रखती है. उसे कोई कुछ दे भी क्या सकता है.

मेरे भीतर बहती नदी ने अपनी पूरी शक्ति अपनी बच्चियों का जीवन बनाने में लगा दी थी. मैं बस यही चाहती थी कि वे किसी भी बेटे से किसी भी तरह कम न हों. मां-बाबूजी के जाने के बाद मैंने अपना मन और दृढ़ कर लिया था.

तलाक के कुछ समय बाद ही सोम ने दूसरी शादी कर ली थी. जब मुझे पता चला कि उसकी पत्नी के भी पहली संतान लड़की हुई है तो एक पाशविक आनंद सिर उठाने लगा था. पर, दूसरे ही क्षण मैं भीतर तक सिहर गयी थी. उस बेकसूर औरत पर क्या गुज़र रही होगी, इसका

अंदाज़ा मुझसे बेहतर भला और कौन लगा सकता था. अनायास मेरे हाथ प्रार्थना में जुड़ गये थे – हे प्रभु, तुमने उसे बेटी जैसा अनमोल रत्न देकर मां बनने का सौभाग्य दिया है, उसे एक बेटा भी दे देना. मैं नहीं चाहती, वह भी मेरी जैसी प्रताड़ना झेले.

बढ़ती बच्चियों से मैंने कुछ भी नहीं छुपाया था. मैं नहीं चाहती थी कि वे अपने पिता को लेकर अपने मन में उठते प्रश्नों के जवाब खोजने के लिए इधर-उधर भटकें. एक बार रास्ते में सोम हमें देख कर रुक गये थे. मैं चाहती तो आसान-सा रास्ता पकड़ कर उन्हें अनदेखा कर निकल जाती, पर मैंने कठिन लेकिन ज़रूरी रास्ता चुना. अपनी बच्चियों से उन्हें मिलवाया और उन्हें बताया कि वे उनके पिता थे. मुझे बहुत अच्छा लगा, जब बच्चियों ने उनसे सहज बर्ताव किया. वे हमें एक रेस्त्रां में चाय नाश्ते के लिए ले गये. बातों ही बातों में उन्होंने कहा था – 'अनुप्रिया, मैं तुम्हें और अपनी बच्चियों को खोकर ख़ुश नहीं हूं, पर वंश भी तो चलाना होता है. मैं मज़बूर था. मोहनी ने मां की इच्छा पूरी कर दी है, एक बेटी के बाद एक बेटा दिया है उसने'.

मैं जोर से हंस पड़ी थी. सोम की उस मज़बूरी वाली बात ने मुझे हंसने पर मज़बूर कर दिया था. वह हैरानी से मेरा मुंह देखने लगे थे और मैं अपनी बच्चियों के साथ यह कह कर उठ गयी थी कि तुम्हें बेटा मुबारक हो.

सोम के मुंह से धन्यवाद नहीं निकला था. उन्होंने कुछ देर और रुकने का आग्रह करते हुए कहा था – कभी भी कुछ ज़रूरत पड़े तो मुझे ज़रूर बताना. याद रखना इन बच्चियों का पिता अभी ज़िंदा है. उनकी बात को अनसुना करते हुए हम रेस्त्रां से बाहर निकल आये थे. मुझे अचरज के साथ-साथ इस बात का संतोष भी था कि बच्चियों ने इस सबको सहजता से लिया था. उस दिन मेरा एक बहुत बड़ा डर मन से निकल गया था.

मैं सब कुछ भूल कर एक ऐसी नदी बन गयी थी जो अपना रास्ता ख़ुद बनाती है और रास्ते की सारी बाधाओं को अपने वेग से हटाती हुई बेखौफ़ सतत प्रवाहित होती रहती है.

जिस मोड़ से मैंने ज़िंदगी का कठिन रास्ता चुना था तब से लेकर अब तक नदी में न जाने कितना पानी बह चुका है. मेरी बड़ी बेटी ने आईएएस की परीक्षा पास की तो मैं ख़ुशी के आंसू छुपा नहीं पायी. दूसरी बेटी ने मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर के रूप में देश की सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी में ज़्वाइन किया तो लगा मेरा सपना पूरा होने लगा है. सबसे छोटी बेटी ने एनीमेशन का कोर्स पूरा करने के बाद अपना ख़ुद का काम शुरू कर दिया तो मुझे लगा मैं ज़िंदगी की कड़ी परीक्षा में पास हो गयी हूं.

उस दिन दरवाज़े की घंटी बजी तो मुझे लगा बड़ी बेटी ऑफ़िस से लौटी होगी. दोनों छोटी बेटियां तो कब की घर आ चुकी थीं. पर, उसकी कार रुकने और बड़ा दरवाज़ा खुलने की आवाज़ नहीं आयी थी. आशंकाओं-कुशंकाओं के बीच मैंने दरवाज़ा खोला तो वहां सोम को खड़ा देख ठिठक गयी. सोम के बालों में सफ़ेदी झलक रही थी. मैं न चाहते हुए भी असहज हो आयी थी. ख़ामोशी उन्होंने ही तोड़ी थी – 'अंदर आने के लिए नहीं कहोगी अनुप्रिया?' मैं दरवाज़े से हट गयी थी और वे अंदर आकर सोफ़े पर बैठ गये थे.

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनकर दोनों बेटियां अपने कमरों से बाहर निकल आयी थीं. सोम को वहां बैठे देख कर वे भी अचकचा गयी थीं. दोनों ने उन्हें नमस्ते कहा तो उन्होंने उठ कर दोनों के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया. मेरे भीतर कुछ घुमड़ने लगा था और मैं ख़ुद को संयत करने के लिए पानी लेने के बहाने किचन में चली गयी थी. जब लौटी तो दोनों बेटियां अपने कमरों में वापस जा चुकी थीं.

मैंने पानी देते हुए सोम से पूछा था – 'आज इधर कैसे? कोई ख़ास काम था क्या?'

'बिना किसी काम तो मेरा यहां आना बनता नहीं. यह अधिकार तो मैं बहुत पहले खो चुका हूं. तुम सच कह रही हो, मैं यहां ख़ास काम से ही आया हूं. इसके लिए बड़ी हिम्मत भी जुटानी पड़ी है मुझे. मोहिनी की तबीयत बहुत ख़राब रहने लगी है. मैं चाहता हूं मेरे बेटे का ट्रांसफ़र इस शहर में हो जाये. उसे बाहर रहते हुए तीन साल से ज़्यादा हो चुके हैं. सारी कोशिशें कर चुके हैं, पर अब तक कोई कामयाबी नहीं मिल सकी है.'

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था – 'मैं क्या कर सकती हूं इसमें?'

'हमारी... नहीं-नहीं तुम्हारी बेटी तीस्ता इसमें मदद कर सकती है. वही उनके विभाग की हैड है. सब कुछ उसके ही हाथ में है. उसका एक इशारा ही काफ़ी होगा.'

लघुकथा

लालबत्ती

✍ आनंद बिल्थरे

नेताजी, स्वयं को कहते तो थे जनसेवक लेकिन, उनके ठाठ, राजा-महाराजाओं से कम नहीं थे. जब भी वे बाहर निकलते, उनकी लंबी कार पर लालबत्ती देखकर लोग खुद-ब-खुद रास्ता छोड़ देते.

लालबत्ती निकालने का फरमान सुनकर तो जैसे, नेताजी के प्राण ही निकल गये. बड़ी मुश्किल से वे बत्ती, निकालने पर राजी हुए.

बत्ती निकलने के बाद 'मणिहीन' से, वे अपनी कोठी में ही क़ैद होकर रह गये. एक दिन, किसी आवश्यक कार्य से उन्हें बाहर जाना था. ड्राइवर भी उस दिन छुट्टी पर था. उन्होंने स्वयं गाड़ी निकाली और अपनी पुरानी मस्ती में चलाने लगे.

सड़क पर भीड़ थी. उनका हॉर्न कोई सुन नहीं रहा था. उन्होंने पहले निकलने की जल्दी में एक रिक्शे वाले को हल्की-सी ठोकर मारी. दो-तीन राहगीर चपेट में आते-आते बचे. अचानक जाने क्या हुआ कि डिवाइडर पर कार बहक गयी.

चौराहे पर खड़े, ट्रैफ़िक इन्स्पेक्टर ने उन्हें रोका. उसे देखते ही नेताजी ने रौब से कहा — 'इंस्पेक्टर हमने गाड़ी से लालबत्ती पहले ही निकाल दी है. फिर हमें क्यों रोका?'

श्रीमान, गाड़ी से तो लालबत्ती निकल गयी है, किंतु आपके मस्तिष्क में वह अभी तक जल रही है, मेरी सलाह है जितना शीघ्र हो सके आप अपने मस्तिष्क से भी उसे निकाल फेंकें. यही, आपके लिए ठीक होगा.

नेताजी, खिसियाकर रह गये. उन्होंने फ़ौरन अपनी कार कोठी की ओर मोड़ दी.

प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.)-४८१००१. मो.: ८३५८९२१००५

ओह तो सोम अपने बेटे का ट्रांसफ़र कराने के लिए तीस्ता की मदद लेने आये हैं. पता नहीं, मेरी आंखें क्यों भीग आयी थीं.

तभी तीस्ता आ गयी थी. वह सोम को नमस्ते कर भीतर जाने लगी तो मैंने उसे वहीं रुकने के लिए कहा और उसे सारी बात बता दी. उसने सब कुछ सुनने के बाद कहा था – 'यह कोई बड़ी बात नहीं है, काम हो जायेगा.'

सोम ने उठते हुए कहा था – 'थैंक यू बेटा.'

तीस्ता के उत्तर ने मुझे भीतर तक भिगो दिया था – 'मां की सिफ़ारिश है और काम भी ज़रा-सा है, इसलिए इसमें थैंक यू जैसी कोई बात नहीं है.'

मैंने देखा था बाहर निकलते सोम के चेहरे पर कई रंग आ-जा रहे थे और वे मुझसे नज़र नहीं मिला पा रहे थे.

आज मेरी तीनों बेटियां अपने-अपने घर में मान-सम्मान से रह रही हैं. उनकी तमाम मिन्नतों और कोशिशों के बाद भी मैंने नदी की तरह अकेले सफ़र ज़ारी रखने का निर्णय लिया है. मेरी सारी सुख-सुविधाओं का इंतज़ाम देखने वे आती रहती हैं और मुझे निहाल कर जाती हैं. जाते समय वे लाजो से यह कहना नहीं भूलतीं – 'आंटी, मां का ख़्याल अच्छी तरह रखना.' मेरी बढ़ती उम्र को देखते हुए उन्होंने मेरे बहुत मना करने पर भी लाजो को मेरी देखभाल के लिए मेरे पास रख दिया है.

अब मैं नब्बे वर्ष की हो चुकी हूं. पीछे मुड़कर देखती हूं तो बस एक बहती नदी दिखाई देती है जो विशाल सागर में खो जाने के लिए बढ़ी जा रही है. अनंत ब्रह्म मेरे लिए बांहें फैलाये खड़ा है और उसमें जा समाने के लिए मैं शांत और संतुष्ट मन से बढ़ी जा रही हूं.

४०२- श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं.३, चेंबूर, मुंबई-४०००८९
मो. : ९८३३४४३२७४.

जुलूस

कमलेश्वर

वे पांचो गोल दायरा बनाकर बैठे हुए थे. बीच में कटे हुए प्याज और तले हुए चने के साथ देशी दारू की तीन बोतलें रखी हुई थीं. यह शहर के बाहर निहायत सूनी जगह थी. पचास क़दम पर शहर को जोड़ने वाली एक पथरीली सड़क थी जिस पर गांव के दूध बेचने वाले, बाज़ार जाने वाले, कचहरी जाने वाले, या बाबूनुमा लोग यदा-कदा गुज़र जाते थे. वैसे बहुधा यह सड़क सोती ही रहती थी.

उनमें से एक ने बोतल उठाकर उसका ढक्कन खोला और नाक के पास ले जाकर उसे सूंघा, ''बाप रे!... इतनी मिलावट! लगता है फिर उसी सड़क छाप दुकान से ले आये हो, क्यों? खालिस पानी!''

''चारा ही क्या था? पैसे भी नहीं थे...'' दूसरा जो बोला, वह कुढ़ा हुआ था ''... टेंट से पैसे निकालते तो तुम्हारी जान छूटती है और अब मीन-मेख निकाल रहे हो...!''

''बस-बस, एक दिन पिला दिया तो मगज मत खाओ.'' पहले ने कहा ''... दरसन भैया ने बुलाया है... सबको जाना होगा!''

''कहां?'' तीसरे ने पूछा.

''ठेका मज़दूरों का जुलूस निकलेगा. उसी को संभालना है.''

''काहे का जुलूस?''

''यह मैं भी नहीं जानता...'' पहले ने कहा ... ''दरसन भैया कल ख़ुद आकर बोल गये हैं तो उनकी बात टाली जा सकती है?''

''मेरा मूड नहीं है यार!'' एक साथी बोल पड़ा.

''अब ज़्यादा मगज मारी मत करो! दरसन भैया ने कहा है... जल्दी करो... चार बजने वाले हैं.''

''लेकिन मिलेंगे कहां पर?''

''हम लोग सदर चौक में खड़े रहेंगे. जैसे ही जुलूस वहां से निकलेगा एक-एक कर शामिल हो जाना है. नारा क्या बोलना है, वहीं पता चल जायेगा...!''

दारू पी चुकने के बाद वे पांचों उठ खड़े हुए और पथरीली सड़क पर आ गये.

''कहीं उस बार जैसे डंडे तो नहीं खाने पड़ेंगे?'' एक ने अपनी शंका जाहिर की.

''अबे डरपोक!... फिर शेखी किस बूते बघारता है... यह करूंगा ओस्ताज, वह करूंगा ओस्ताज... दरशन भइया के सामने तो हुकुम के हाज़िर बने रहते हो!''

''डरने की बात नहीं है यार!'' उसने कहा ''...लेकिन बेफ़ायदे डंडे खाना, सच में अखर जाता है. उस बार हिंडाल्को कंपनी वाले हड़ताल में क्या हुआ? दिन भर झख मारते रहे. नारे लगा-लगा कर गला बैठ गया, लेकिन एक बीड़ी के लिए भी नहीं पूछा गया. उल्टे भूखे–प्यासे रात भर हवालात में बंद रहे.''

''उस बार दरसन भइया ख़ुद चपेट में आ गये थे. नहीं तो पूरे दस बोतल के पैसे देने वाले थे...''

''चलो न आज पता चल जायेगा!''

वे चौक पर पहुंच चुके थे. एक पान की गुमटी के पास खड़े होकर वे सड़क पर नज़र फेर ले रहे थे. साढ़े चार बजने को थे, लेकिन अभी तक सड़क का सिर-पूंछ दिखायी नहीं दे रहा था.

''न तो जुलूस दिखाई पड़ता, न नारे ही सुनाई पड़ते हैं. कहीं तुम्हारे सुनने में चूक तो नहीं हो गयी, आज निकलेगा या कल?''

''बेसबर क्यों होते हो, डाक गाड़ी तो नहीं है कि

चलना शुरू करे और धड़धड़ाते हुए निकल जाये. जुलूस तो ठोलों के घेर में धीरे-धीरे चलता है. बीच-बीच में रुक-रुक कर नारे लगाने होते हैं... तुम भी नौसिखिए जैसी बात करते हो...''

तभी नारों की आवाज़ सुन पड़ी और वे लोग सजग हो गये.

''तुम लोग इधर-उधर छिटक जाओ. जुलुस के आते ही एक-एक कर मिल जाना.'' पहले ने कहा.

वे एक दूसरे से हट कर खड़े हो गये. कुछ देर बाद जुलूस आता दिखा. ज़्यादा हो-हल्ला नहीं हो रहा था. कभी-कभी एकाध मरी हुई-सी आवाज़ से नारा उछाला जाता जिसे कराहती हुई सी आवाज़ें लपक लेती थीं. सबसे आगे यूनियन का झंडा उठाये दरसन भइया और उनके गुर्गे थे. उनके पीछे मज़दूरों की तीन लंबी कतारें थीं. अगल-बग़ल और पीछे से घेर कर पंद्रह-बीस सिपाहियों का हुजूम चल रहा था. मज़दूरों के रूखे-सूखे चेहरे, पसीने और गंदगी से अंटे थे. मैले-कुचैले कपड़ों में वे उदासीन भाव से बढ़े आ रहे थे. इनमें बच्चे और बूढ़े भी शामिल थे. कुछेक को छोड़कर बाक़ी लोगों को पता नहीं था कि जुलुस किसलिए निकाला जा रहा है. सरदार ने कहा था इसलिए सभी अपनी रोजी छोड़कर जुलूस में शामिल हो गये थे. कई लोगों के यहां आज सुबह अदहन भी नहीं चढ़ पाया था. रात तक कुछ मिलने की आशा भी नहीं थी. बीच-बीच में कई एक बदमाश क़िस्म के लोग भी घुस आये थे जिनका इस जुलूस से कोई लेना-देना नहीं था. वे जब-तब रेजाओं को धकियाते-छूते चल रहे थे. वे पांचों भी एक-एक कर जुलूस में शामिल हो चुके थे और बड़े जोश-खरोश के साथ नारे उछाल रहे थे:

''मज़दूर एकता!''
''ज़िंदाबाद! 'ज़िंदाबाद!''
''राइज़िंग कंपनी!''
''मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!
''मैनेज़िंग डाइरेक्टर!
''मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!
''दरसन भइया!''
''मुर्दा.. 'ज़िंदाबाद! 'ज़िंदाबाद!''
''अरे जोर से बोलो मटियाफूसों!... जोर से...!''
'''ज़िंदाबाद! 'ज़िंदाबाद!

१९ जनवरी १९६१, बिलासपुर (छ. ग.)
एम. ए. (हिंदी), बी. जे. एम. सी.

: प्रकाशन :

कहानियां, कविताएं, आलेख, व्यंग्य, आदि. कथन, कथादेश, वर्तमान साहित्य, आकार, अक्षर पर्व, संकल्प रथ, पाठ, जनसत्ता, देशबंधु, नवभारत, हरिभूमि एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित.
उपन्यास 'तुहर जाय ले गीयां' एवं 'जुराव' तथा 'बिपत' एवं कहानी-संग्रह 'अच्छा, तो फिर ठीक है' प्रकाशित.

: अन्य :

आकाशवाणी से कहानियों एवं कविताओं का प्रसारण, गोर्की के निबंध 'मैन' सहित अन्य छिट-पुट अनुवाद.

: सम्मान :

प्यारे लाल गुप्त स्मृति 'पाठ' सम्मान, निराला साहित्य परिषद साहित्य सम्मान, आदर्श सांस्कृतिक समिति साहित्य गौरव सम्मान.

: संप्रति :

एसईसील, कुसमुंडा क्षेत्र में वरिष्ठ अनुवादक.

''मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!

कुछ समय तक नारों की जोशीली आवाज़ें आस-पास वालों के कान फाड़ती हुई और दहशत पैदा करती हुई गूंजती रहीं, किंतु फिर गधों जैसे रेंकने की आवाज़ें आने लगीं. बार-बार जोश चढ़ाया जाता किंतु जुलूस अब ठंडा-ठंडा चला जा रहा था. अंधेरा छाने लगा था. सड़कों की लाइटें जल उठी थीं. दुकानों से सफ़ेद-रंगीन रोशनियां पसर रही थीं.

राइज़िंग कंपनी मूलत: भवन निर्माण करने वाली

कंपनी थी, लेकिन दीगर काम भी करती थी. अभी हाल ही में उसने ईंट सप्लाई के लिए निविदा आमंत्रित की थी. शहर के पास ही एक बड़े औद्योगिक संस्थान का निर्माण कार्य चल रहा था. इसके लिए बड़ी तादाद में ईंटों की ज़रूरत थी. लाखों का फ़ायदा होने की संभावना थी, अतः ठेकेदार इस मौक़े को हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे. ठेकेदार लखीराम ने कंपनी के मैनेज़िंग डायरेक्टर को दो लाख रुपये देना मंजूर कर लिया था, लेकिन पता नहीं कैसे, ईंट सप्लाई का काम एक अन्य ठेकेदार, बालक सिंह को मिल गया था. लखीराम ग़ुस्से से आग-बबूला हो गया. वह सीधे एम. डी. को धमकी देने पहुंच गया. यह कान्ट्रैक्ट रद्द किया जाये और जैसे कि पहले समझौता हुआ था, कान्ट्रैक्ट उसे ही दिया जाये, नहीं तो कंपनी का काम ठप्प कर दिया जायेगा. लेकिन पता नहीं, कौन-सी मज़बूरी थी, एम. डी. राजी नहीं हुआ. लखीराम दौड़ा-दौड़ा दरसन भइया के पास गया. दरसन भइया पहले कम्युनिस्ट थे, लेकिन फ़िलहाल कांग्रेस में शामिल हो गये थे. अपने पाले हुए गुर्गों को लेकर वे आंदोलन और हड़ताल करवाने में माहिर थे. उन्होंने कंपनी में हड़ताल करवाने का ठेका ले लिया. आज का जुलूस उसी उपलक्ष्य में निकाला गया था. एम. डी. को ज्ञापन देने के लिए. यदि कंपनी मज़दूरों की उचित मांगें पूरी नहीं करती तो कंपनी की ईंट से ईंट बजा दी जायेगी. उनकी उचित मांगें थीं, कंपनी के मज़दूरों की छंटनी कर निकाला न जाये, हाल ही में निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापस लिया जाये, शासन द्वारा निर्धारित दर से मज़दूरी का भुगतान किया जाये. मज़दूरों के ठिकानों पर दिन दहाड़े लूट-पाट और गुंडा-गर्दी होती रहती है, उनकी सुरक्षा की गारंटी दी जाये आदि-आदि.

दिन भर के भूखे प्यासे मज़दूर थक कर चूर हो रहे थे. वे थके-मांदे, लड़खड़ाते क़दमों से चले जा रहे थे. अब नारों के जवाब में दम नहीं रह गया था. छिट-पुट रूप से कहीं-कहीं से उकताये हुए स्वर से नारे निकल जाते थे. अधिकतर लोगों की जुबान पर ताले पड़ गये थे. उनकी सांस बैठ गयी थी. एम. डी. का निवास स्थान अभी काफी दूर था. जुलूस सीधे रास्ते से तो जा नहीं रहा था. दिन भर शहर में घुमा कर अब एम. डी. निवास की ओर ले जाया जा रहा था.

दरसन भइया ने सोचा, ऐसे फ़ीके-फ़ीके जुलूस का भला क्या प्रभाव पड़ेगा? यही तो असली समय है. ऐसे जोशीले नारे लगने चाहिए कि एम. डी. के होश ठिकाने आ जायें. दरसन भइया पलट कर खड़े हो गये. उन्होंने जुलूस को रुकने का इशारा किया. भीड़ में नज़रें फिराकर अपने गुर्गों को देखा, फिर एक छोटा-सा उत्प्रेरक भाषण दे डाला ''मेरे बहादुर साथियों! मुझे मालूम है, आज दिन भर से आप लोगों के पेट में अन्न के दाने नहीं पड़े हैं. चक्कर लगाते-लगाते आप लोग थक गये हैं. लेकिन अधिकार की लड़ाई केवल बातों से नहीं होती. इसके लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, तकलीफ़ उठानी पड़ती है. मैं भी तो दिन भर से आप लोगों के साथ हूं. लेकिन जब तक हम लोग अपने लक्ष्य को पा नहीं लेंगे, यह भूख और थकान हमें हमारे संकल्प से डिगा नहीं सकती. कदापि नहीं. सत्यमेव जयते... सत्य की ही विजय होती है. पर इसके लिए संघर्ष करना पड़ता हैं... तो साथियों हम पूरे जोश-खरोश के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें... मजदूर एकता!''

''ज़िंदाबाद! 'ज़िंदाबाद!'' नारे नये जोश के साथ लगने लगे.

''मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!''

मानों, बांस के जंगल ने भाषण की रगड़ खा कर फिर से चिंगारी पकड़ ली थी. गुर्गे चिंचिया रहे थे. हाथ उठा-उठाकर नारे उछाल रहे थे. अगल-बग़ल और पीछे चल रहा पुलिस का दस्ता जो कुछ देर पहले स्थिति की शिथिलता से लापरवाह हो गया था, फिर से सजग हो उठा. अब दरसन भइया आश्वस्त होकर, आत्मविश्वास से सीना फुलाए और एक हाथ में झंडा उठाये क़दम ताल देते चल रहे थे.

एकाएक जुलूस के बीच में हलचल-सी पैदा हुई. लोग भिर-भिर कर के तितर-बितर होने लगे. दरसन भइया ने भौंचक हो पलट कर पीछे देखा. कुछ लोग गुत्थम-गुत्था हो रहे थे. दरसन भइया झट से दौड़ कर उनके पास पहुंच गये. गुर्गे भी आ जुटे. गुत्थम-गुत्था हो रहे लोगों को खींच-खांचकर एक-दूसरे से अलग किया गया. फिर मामले के सिरे को दरसन भइया ने पकड़ने का प्रयास किया तब मालूम हुआ कि जुलूस में बहोरिक की नयी ब्याही दुल्हन, बैसाखा भी थी. बहुत देर से उसके पीछे दो-तीन छंटुए लगे हुए थे. बहोरिक आगे-आगे चल रहा था. जब भीड़ का रेला कहीं-कहीं हड़बड़ाकर आगे की ओर धक्का खाता तो ऐसे

मौक़े के इंतज़ार में रहने वाले वे छंटुए बैसाखा से टकरा जाते थे, उसे छूते-टमरते थे. लाज के मारे उसके मुंह से कुछ नहीं निकलता था. वह परेशान होकर कई बार अपनी जगह बदल चुकी थी, लेकिन छंटुए फिर पीछे लग जाते थे. इस बार एक छंटुए ने पता नहीं, कैसा दुस्साहस किया कि वह ज़ोरों से चिल्ला उठी. आवाज़ सुनकर बहोरिक ने नज़दीक आकर देखा. बैसाखा ने उस छंटुए की तरफ़ इशारा किया और फूट-फूट कर रोने लगी. बहोरिक ग़ुस्से से पागल हो उठा. वह उस आदमी पर झपट पड़ा. उस छंटुए के साथी भी बहोरिक पर पिल पड़े. जुलूस तितर-बितर होने लगा.

दरसरन भइया ने स्थिति को क्षण भर में भांप लिया. अपने उन छंटुए गुर्गे पर उन्हें बहुत ग़ुस्सा आया. छेड़खानी के लिए यही मौक़ा पाया था बेवकूफों ने! सारे किये-कराये पर पानी फिर सकता है! उन्होंने बैसाखा को सिर से पांव तक भरपूर निग़ाहों से देखा. अपने ब्याह की पियरी पहने वह लाज से सिमटी-सिकुड़ी खड़ी थी. उसके पास दूसरी साड़ी थी उसे आज उसने धोया था. ब्याह के चौथे दिन ही वह चली गयी थी इस शहर में, अपने पति के साथ कमाने-खाने. वह अभी बहोरिक से पूरी तरह से खुल नहीं पायी थी और आज यह हादसा हो गया.

दरसन भइया ने इस समय बड़ी चतुराई से काम लिया. उन्होंने तीनों बदमाशों को एक-एक थप्पड़ रसीद किये और लानत-मलामत भेजी. उन्होंने चेताया, वे लोग सुधर जायें, नहीं, उन्हें पुलिस के हवाले कर दिया जायेगा. उनका सिक्का अब मज़दूरों पर और गहरे जम गया था. दरसन भइया अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर सकते! देखा कैसी मरम्मत की है अपने आदमियों की? अरे भई, ग़रीब-गुरबों का कोई सच्चा साथी है तो वह हैं दरसन भइया! बूढ़ी दुआसा दिन भर की अनखायी, थक कर लुंज-पुंज हो रही थी. वह साहस कर दरसन भइया से बोली, ''चाय पिला दो न बाबू!''

दरसन भइया का पारा चढ़ गया. अपने आप पर संयम रखते हुए बोले, ''तुम एक होती तो पिला देता माई! सैकड़ों लोग यहां भूखे-प्यासे चल रहे हैं. सबको यहां कहां से पिला सकता हूं. आख़िर मैं भी तो हूं भूखा-प्यासा सुबह से तुम्हीं लोगों के साथ हूं. चलो पहले ज्ञापन दे आते हैं, फिर देखा जायेगा... हिम्मत रखो!''

''यहां चा-चू पीने निकली है कि जुलूस में?'' एक गुर्गा खौखियाया ''... घर में रोटी-पानी पाना बुढ़िया...!'' गुर्गे की इस बात पर कहकहे लगे और वह कपस कर रह गयी.

दरसन भइया और गुर्गों ने फिर से जोर लगाकर जुलूस को नये सिरे से जान डाली. ऐसे मौक़े पर दरसन भइया और गुर्गों की आपसी समझदारी बहुत काम आती है.

दरसन भइया ने फिर झंडा उठा लिया. जुलुस उनके पीछे-पीछे चलने लगा. मज़दूरों के पांव घिसट रहे थे. उनके अगल-बग़ल सिपाही हैरान और परेशान से चल रहे थे. नारे का दौर एक बार फिर शुरू हो गया था और ज़्यादातर 'दरसन भइया... ज़िंदाबाद!' के नारे लगवाये जा रहे थे. अब एम. डी. के निवास का फ़ासला सौ क़दम रह गया था. गला फाड़ नारे बोलवाये जा रहे थे. मज़दूर भी जैसे अपनी बची-खुची ताकत को झोंक दे रहे थे. दुआसा, जो सूखा मुंह बांधे घिसट-घिसट कर चल रही थी, एकाएक लुढ़क गयी. अंधेरा होने कारण ज़्यादा कुछ दिखायी नहीं दे रहा था. सब का ध्यान सिर्फ़ और सिर्फ़ दरसन भइया और उनके झंडे पर टिका हुआ था. वे ख़ुद नहीं चल रहे थे, बल्कि लस्टम-पस्टम किसी सम्मोहन के बल पर चले जा रहे थे. एक संभ्रम में जड़ीभूत. दुआसा की सूखी ठठरी के पास से लोग गुज़रते रहे. शायद कपड़े की फेंकी गयी पोटली समझ कर किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया. किसी को पता तक नहीं चला. उस जगह पर महीनों से लैंप नहीं जल रहा था, न अगल-बग़ल दुकान ही थी जिसकी रोशनी में कुछ दिख पाता. सड़क की एक ओर नदी थी और दूसरी ओर स्कूल के खेल का मैदान.

जुलूस अंतत: अपने गंतव्य तक पहुंच गया. बंगले के गेट पर सिक्यूरिटी का दल तैनात था. दरसन भइया और उसके गुर्गे गेट के पास आ गये और जोर-जोर से नारे बोलवाने लगे. बिखरी हुई भीड़ बिखरी हुई आवाज़ों में नारे लगा रही थी और जहां-तहां जगह देख कर ज़मीन पर ही परसती जा रही थी. सिक्यूरिटी इस्पेक्टर से पता चला एम. डी. अभी दौरे से वापस नहीं लौटे हैं. शायद, कल आयें. दरसन भइया क्षण भर को हतोत्साहित होकर सोच में पड़ गये, फिर फ़ौरन संभल भी गये. यही तो ख़ासियत है उनकी. विषम से विषम परिस्थिति में भी भले कुछ समय के लिए गड़बड़ा जायें, लेकिन तुरंत ही उबर के मोती ढूंढ़ ही लाते हैं.

वे एकदम से भीड़ की ओर मुखातिब हुए और शेर

की तरह दहाड़ते हुए बोले, ''देख लिया न आप लोगों ने? एकता और सच्चाई में कितना बल होता है?'' उन्होंने सिर उठाकर बंगले की छत पर नज़र फेरी जहां पर एम. डी. का परिवार डरा-सहमा सा भीड़ को ताक रहा था. दरसन भइया कह रहे थे ''... देखा भागा-भागा फिर रहा हैं वह आदमी! हमारे डर से! कहते हैं, वह दौरे से वापस नहीं आया है. हम जानते हैं कि वह क्यों वापस नहीं आया है. हम मज़दूरों का सामना करने की हिम्मत नहीं है उसमें. लेकिन जायेगा कहां? आज न सही, कल आयेगा... साथियों! हमने जो अपने अधिकारों के लिए, सच्चाई के लिए जेहाद छेड़ा है उसे पूरा करके दम लेंगे. हम हताश नहीं होंगे. अरे हम भ्रष्टाचार को कुचल कर छोड़ेंगे... कल फिर आयेंगे... कल फिर आयेंगे हम... मज़दूर एकता!''

थोड़ी देर इंतज़ार के बाद गुर्गों की आवाज़ें कड़कीं, ''ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद!'' मज़दूरों में अब नारे लगाने का दम नहीं रह गया था. दरसन भइया ने भी इस बात को समझ लिया था. वे कल फिर आने का वादा कर के अपने गुर्गों के साथ चले गये. रह गयी थी किंकर्तव्यमूढ़, अवाक-सी लस्त-पस्त भीड़. फिर वे भी तमाचा खाये-से मुंह लिये एक-एक कर उठ खड़े हुए. उन्हें अभी अपने घर पहुंचने के लिए कोस भर का रास्ता नापना था. जहां झोपड़ियों में भूखे और रो-रोकर थक गये बच्चे जमीन से कान सटाये सो रहे होंगे. सब के साथ पियरी झटकारती बैसाखा भी चल पड़ी. और बूढ़ी दुआसा... कौन दुआसा?

✍ *बी-१३४, आदर्श नगर, कुसमुंडा, कोरबा (छ.ग.)-४९५४५४*
मो. : ८९५९१९३४७०.
ईमेल : rajkameshwar@gmail.com

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

दो ग़ज़लें

✍ *डॉ. रामबहादुर चौधरी 'चंदन'*

भरोसा जब दरकता है तो रिश्ते टूट जाते हैं,
सलीके ज़िंदगी जीने के हमसे छूट जाते हैं.

सियासत बन गयी ख़ुदग़र्ज जब कोई तवायफ सी,
सरे बाज़ार तब अस्मत दरिंदे लूट जाते हैं.

अदालत भी ज़माने की बड़ी बेदर्द होती है,
गवाही के बिना सच भी यहां हो झूठ जाते हैं.

कभी सपने सजाये थे, मगर बिखरे सभी ऐसे,
उफन कर बुलबुले बारिश में जैसे फूट जाते हैं.

मुहब्बत भी बग़ावत है कभी करके जरा देखो,
चढ़े हैं जो मुलम्में हम पे सारे छूट जाते हैं.

हमारे दिल की दुनिया की कोई सरहद नहीं होती,
जहां के प्यार की चाहत की कोई हद नहीं होती.

करिश्मा ही कहो यारो ये क़ुदरत की निग़ाहों का,
जहां भी प्यार होता है वहां नफ़रत नहीं होती.

ख़ुदाई ये ख़ुदा की, पत्थरों की ढ़ेर हो जाती,
बसायी दिल की धड़कन में अगर उल्फत नहीं होती.

ठहर जाती हमारी ज़िंदगी अंधी गुफाओं में,
अगर आकाश छूने की हमें हसरत नहीं होती.

भरोसा बाजुओं पर है जिसे उसने ही जाना है,
हथेली पर खिंची रेखा कभी किस्मत नहीं होती

ज़मीं से आसमां तक प्यार फैला है फ़िजाओं में,
सिमट जाना कहीं भी प्यार की फितरत नहीं होती.

✍ *फुलकिया, बरियारपुर, मुंगेर, बिहार-८११२११.*
मो. : ९२०४६३६५१०

धर्मपाल महेंद्र जैन की दो कवितायें

जनतंत्र का वह एक जन है

वह खड़ा जो एक नारा दे रहा है,
एक नन्हा ख़्वाब लेकर जी रहा है.
दिन ढले पूरी मजूरी हाथ में हो,
वह दिहाड़ी कर रहा है.

काग़ज़ जो उसके हाथ में है,
किसने लिखा, क्यों कर लिखा?
प्रश्न उससे व्यर्थ है
हर कहीं पढ़ना उसे है,
वह दिहाड़ी कर रहा है.

कुछ घूंट पी कर हौसला है,
ये जोश भी आवाज़ भी
रूप है यह शाम तक,
कल नया कोई स्वांग है,
वह दिहाड़ी कर रहा है.

कौन सच्चा, क्या इरादे,
क्या सोच उसका
जो दिला दे कुछ अधिक
वो ही खरा, वो ही बड़ा है,
वह दिहाड़ी कर रहा है.

जनतंत्र का वह एक जन है,
पादुका उसकी वहां है
तंत्र का मंतर जटिल है,
तंत्र का बंदर कुटिल है
राजनेता देश जाने,
वह दिहाड़ी कर रहा है.

मेरे मोहल्ले में

पेड़ बनना हो तो जड़ें भीतर, फैली हों,
तूफ़ां में उखड़ने का जोख़िम नहीं फिर.

पसीने की गंध कभी मिट्टी से पूछना,
उसने देखा है पिघलते आदमी को.

सूरज को बड़ी जल्दी है सुबह करने की,
धरती का अलसाना उसे भाता होगा.

धूप जब भी नाचती है मेरे आंगन में,
अच्छा लगता है सूरज का हंसना ऐसे.

चौराहे तो नहीं हैं, सड़क से पूछ लेना,
उसे मालूम है यहां पगडंडी के रास्ते.

मेरे मोहल्ले में आइए तो सही फ़ुर्सत में,
चहचहाते परिंदे घेर कर मोह लेंगे तुम्हें,

1512-17 Anndale Dr, North York, Toronto, On M2N2W7
E-mail : hansadeep8@gmail.com

काली माई का थान

डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव

आपको हमारे गांव जाना है? बहुत आसान है. कई तरीक़े भी हैं, वहां जाने के. आप चाहें तो शहर से पैदल चले जायें. बस सात मील का रास्ता है. अगर मंगल का दिन हुआ तो शहर से ख़रीदारी करके लौटते हुए बहुत सारे लोग मिल जायेंगे. मंगल के दिन बड़ी बाज़ार लगती है न. बाज़ार तो ख़ैर शुक्रवार के दिन भी लगती है. पर उस दिन सब लोग काली माई के मंदिर दरसन करने और मानता पूरी करने जाते हैं. सो उनके साथ औरतें और बच्चे होते हैं, और जल्दी लौटना पड़ता है. रास्ते में जंगल जो पड़ता है. और ऊपर से भंगवा का नार और बकुलाही नदी. आषाढ़ से भादों तक तो इनमें ख़ूब पानी रहता है, पर बाक़ी समय ये सूखे ही रहते हैं. पहले पड़ेगा भंगवा का गांव, फिर सड़ारी और फिर खजुरनी. इसके बाद आप बकुलाही के पास पहुंच जायेंगे. वहां से हमारा गांव बिलकुल साफ़ दिखाई पड़ता है.

या फिर आप भंगवा की चुंगी से इक्का ले सकते हैं. आठ आने में शंकर गंज बाज़ार पहुंच जायेंगे. वहां से ठीक उत्तर की तरफ़ हमारा गांव है — बस एक मील का रास्ता है. रेलवे लाइन पार करते ही आपको एक बड़ा-सा बाग़ दिखाई पड़ेगा. इसी के बीच हमारा पक्का घर है.

आप आ गये. चलिए आपको गांव घुमा लायें.

हमारे घर के ठीक पश्चिम की ओर दस बीघे के फ़ासले पर वो देखिए भल्लू का घर है. उनके बग़ल में मोटर नाई रहते हैं. मोटर के घर के ठीक सामने एक बीघे के फ़ासले पर है, ख़ूब बड़ा नीम का पेड़. आप दूर से ही जान जायेंगे कि इस पेड़ की एक फुनगी तक किसी ने कभी नहीं तोड़ी है. अगर चैत का महीना होता तो दूर से ही उसके फूलों की ख़ुशबू आपको प्रसन्न कर देती. और सावन हुआ तो उसके नीचे निमौरियों की दरी बिछी होती और ऊपर लगे होंगे गुच्छे के गुच्छे. आप एकाध पकी निमौरी ज़रूर खा के देखना. इसकी पकी निमौरियां बहुत स्वादिष्ट होती हैं.

और हों भी क्यों न. इस नीम पर काली माई का वास है. देखते नहीं- इसके तने के चारों ओर कच्चा चबूतरा बना है, और उस पर झंडियां गड़ी हैं. यह जो सबसे पुरानी झंडी है न, उसे गोपाल ने लगाया है — उसने नौकरी पाने की मानता मानी थी. और सबसे नयी झंडी पतरका ने गाड़ी है, पिछले महीने हर हफ़्ते उनका एक सुअर मर जाता था. 'काली माई रक्षा करो.'

यही है काली माई का थान. इसके दक्षिण में जो दूसरा मकान है, उसी में ओझा रहते हैं. पूरे गांव में बस वही एक हैं, जिनका नाम लेते समय लोग उनकी जाति नहीं जोड़ते. लोग उन्हें राम चरन ओझा या फिर सिर्फ़ ओझा कहते हैं. जबकि उनके बड़े भाई का पूरा नाम पुकारा जाता है — सुमेर गड़ेरिया. हां तो मैं आपको काली माई के थान के बारे में बता रहा था.

यह नीम का जो पेड़ है उसे मेरे बाबा ने लगाया था. जब यह काफ़ी बड़ा हो गया तो एक दिन चरन के बाप राम ग़ुलाम अपने ऊंट के लिए पत्तियां तोड़ने गये. उन्होंने ऊंट को नीचे बांधा और कटवांसा लेकर पेड़ पर चढ़ गये. अब एक डाल पर कटवांसे की हंसिया पड़ी नहीं कि तमाम मधुमख्खियों ने उन पर हमला कर दिया. वे गिरते–पड़ते भागे. पर मधुमख्खियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा. भागते-भागते वे उस सामने वाले गड्ढे तक पहुंचे. उसमें भरा था पानी. उसी में डुबकी लगा कर उन्होंने जान बचायी. मधुमख्खियां देर तक वहीं मंडराती रहीं. पर काली माई का सुमिरन करते ही जैसे परगट हुई थीं वैसे ही ग़ायब हो गयीं. उसी रात

चरन को काली माई ने दर्शन दिया और सबेरे नहा धो कर जब चरन इस नीम के पेड़ के नीचे से गुज़रे तो काली माई उन पर परगट हुईं.

लोग बताते हैं कि पहले तो चरन अभुआने लगे. वे नीम के तने के पास जाते और हांफते-हांफते फिर वापस आ जाते. लगता था जैसे उन्हें किसी ने रबर के छल्ले से इस पेड़ से बांध दिया था. जैसे ही वे पेड़ से दूर जाते थे वह छल्ला तन जाता था और उन्हें खींच कर फटाक से नीम के तने पर ला पटकता था. पूरे गांव में गुहार मच गयी.

तब आये थे भगत. उन्होंने देखते ही कहा, 'अरे चरनवा रे. तोहरे उप्पर काली माई परगट भई हैं. तै अब से उनकर पूजा कर.' और इस तरह चरन ओझा बन गये. यह चबूतरा उन्हीं ने बनाया है. आप ठहरे शहराती आदमी आप कहेंगे इसमें क्या ख़ास बात है. अरे भैय्या. इस चबूतरे की मिट्टी बहुत पवित्र है. इसकी एक एक चुटकी ओझा के हाथ से निकल कर सब मर्जों का इलाज करती है.

ओझा हमारे हलवाहे भी हैं. हमारे यहां तीन चार हलवाहे और भी हैं. वे हमारे घर खाना खा लेते हैं, बासी रोटी तक ले लेते हैं. लेकिन ओझा बड़ी सफ़ाई से रहते हैं. काली माई के रिसियाने का डर जो रहता है. काली माई तो अंतरजामी हैं, उनसे कुछ भी नहीं छुपा पायेंगे. उनकी शुचिता की बात सबको मालूम है. पंचायतों में उनकी गवाही पर बहस नहीं होती. मेहनत मज़दूरी करके वे अपने परिवार का पेट पालते हैं और अपना आत्मसम्मान बहुत सहेज कर रखते हैं.

ओझा के बड़े भाई सुमेर और छोटे भाई जतन कलकत्ता में नौकरी करते हैं. सुमेर के चार लड़के और एक लड़की है. ओझा की एक लड़की है. जतन के बच्चे नहीं हैं. जतन का गौना होने के तीन चार साल बाद तक जब कोई बच्चा नहीं हुआ तो गांव की औरतों ने जतन की बहू को ताने देना शुरू कर दिया. और फिर एक दिन जतन अपनी बहू को घर पर छोड़ कर कलकत्ता चले गये और किसी मिल में नौकर हो गये. जतन के कलकत्ता जाने के कुछ ही दिन बाद से जतन बहू को लेकर तरह तरह के क़िस्से उड़ने शुरू हो गये. पहले तो ओझा चुप रहे. फिर एक दिन वे एक पोस्ट कार्ड लेकर मेरे पास आये और मुझसे जतन को चिट्ठी लिखने को कहा. मैं तब पांचवी कक्षा में पढ़ता था. मैंने अपनी सेंठे की क़लम और दावात उठाई और हम दोनों बाग़

जन्म : औवार गांव, प्रतापगढ़ (उ. प्र.) वर्ष : १९५२

प्रारंभिक शिक्षा गांव के ही विद्यालय तथा प्रतापगढ़ के समीपवर्ती शहर में. १९६४ में इलाहाबाद आगमन तथा १९७० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. एससी. की डिग्री प्राप्त. १९७० में परमाणु ऊर्जा विभाग के प्रशिक्षण विद्यालय में चयन तथा १९७१ में वैज्ञानिक के रूप में नियुक्ति. बंबई विश्वविद्यालय से पीएच. डी. (१९७९). १९७९ में परिवर्ती ऊर्जा साइक्लोट्रॉन केंद्र कोलकाता में आगमन तथा वहीं से ३० जून २०१६ को निदेशक तथा अतिविशिष्ट वैज्ञानिक के रूप में सेवानिवृत्त. वर्तमान में इसी संस्थान में राजा रामन्ना फ़ेलो के रूप में अनुसंधानरत. जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में से प्रत्येक में लगभग दो वर्षों तक तथा केप टॉऊन आदि में अल्पावधि के लिए अतिथि पदों पर कार्य.

''वैज्ञानिक'' में प्रथम हिंदी लघु कथा का प्रकाशन. इसके पश्चात १० लघुकथाएं, लगभग ५० कविताएं, एक लघु उपन्यास तथा विभिन्न प्रकार के निबंध हिंदी में प्रकाशित व रेडियो पर प्रसारित. ऑल इंडिया द्वारा एक हिंदी लघु कथा का रेडियो नाट्य रूपांतरण. १९८२ में 'और बांसुरी हार गयी' कहानी धर्मयुग में प्रकाशित.

१९९८ से अंग्रेज़ी में लेखन कार्य. अधिकांश लघु कथाएं ''साहित्यिक परिदृश्य'' में अथवा स्टेटमैन के ''त्योहार अंक'' में प्रकाशित.

ये कहानियां ग्रामीण भारत में हो रहे तीव्र परिवर्तन तथा अपनी ज़मीन से विस्थापित लोगों की कारुणिक व्यथा-कथा बयां करती हैं, जिनके लिए उनकी स्मृतियां एक प्रकार का समाधि-स्थल है. प्रथम पुरुष में कथित इन कथाओं में ग्राम्य-जीवन का सजीव चित्रण किया गया है.

कुछ कहानियां धनी तथा शक्तिशाली वर्गों द्वारा हमारे ग्रामीणों पर किये जा रहे शोषण तथा मूक सहनशीलता,स्वप्न विखंडन एवं इन्हें अपनी नियति मान लेने की विवशता पर केंद्रित हैं.

के एक कोने में गये.

चरन बोले और मैंने लिखा, 'चिट्ठी भेजा चरन ओझा, पावैं जतन गड़ेरिया वल्द राम ग़ुलाम गड़ेरिया. तुमको, बड़का भैय्या को, और गांव के बाक़ी लोगों को हमारा राम राम पहुंचे.' ओझा बोल रहे थे और मैं क़लम डुबो-डुबो कर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख रहा था. यह बात लिखते-लिखते मैंने बताया कि पोस्ट कार्ड का एक तरफ़ का पूरा हिस्सा भर गया है. ओझा परेशान हो गये. अभी तो बात शुरू ही की थी. मैं भाग कर गया और पतली वाली क़लम ले आया. अब लिखा, 'तुम्हारी मेहरारू का चाल-चलन ठीक नहीं है. थोड़े लिखे को ज़्यादा समझना.' यह लिख कर मैंने ओझा को बताया कि अब बस दो लाइनों की जगह बची है. ओझा ने बहुत सोच कर कहा, 'लिखो ले जाओ', और मैंने संभाल कर लिखा, 'लिखा, ले जाओ.' अंत में मैंने बहुत सोच कर लिखा, 'तुम्हारा शुभचिंतक, ओझा.'

अब पता लिखने की बारी थी. काफ़ी सोचने के बाद लिखा गया, 'जतन गड़ेरिया, जूट की मिल, कलकत्ता, हावड़ा स्टेशन के पास. उत्तर प्रदेश'. उत्तर प्रदेश वाला हिस्सा मेरे दिमाग़ की उपज था, क्योंकि हमारे मामा के घर से जो भी चिट्ठी आती थी उसमें उत्तर प्रदेश लिखा रहता था सो मेरे हिसाब से उत्तर प्रदेश लिखना ज़रूरी था. ओझा ने तो बताया था, हावड़ा स्टेशन से बीस बीघा दूर. चिट्ठी उसी दिन डाल दी गयी. कई महीने बीत गये पर न तो जतन आये न उनकी कोई चिट्ठी.

जतन क़रीब एक साल बाद आये. ओझा के पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्हें कोई चिट्ठी नहीं मिली थी. ख़ैर ओझा ने सार में सब कुछ बताया. जतन ने पनही उठाई और अपनी बीबी को धुनना शुरू किया. कुछ ही देर बाद जतन की बहू ने नाम गिनाना शुरू कर दिया. जतन सिर पकड़ कर बैठ गये. और फिर वे अपनी बीबी को कलकत्ता ले गये. सुनने में आया कि कलकत्ता में किसी ने उस पर भूत चढ़ा दिया था. जतन ने उसे फिर गांव भेज दिया. ओझा उसका फूला पेट देख कर जान गये कि भूत कौन था.

ओझा का मन उन्हें ख़ूब कचोटे. वे जतन की नामर्दगी के बारे में जानते थे. वे ख़ुद काली माई के इतने बड़े भगत, इतने गुनी. काली माई का नाम लेकर वे नज़र उतार देते थे. टोनहिनों द्वारा बांध दिये गये भैंस का दूध खोल देते थे. बकरा चढ़ा कर काली की पूजा करके अगले साल की फ़सल और मौसम की जानकारी हासिल कर लेते थे और गांव में माता के प्रकोप आने पर गांव की सीमा बांध देते थे. काली माई उन पर उदार थीं.

और अब. अब उन्हीं के घर में पाप पल रहा था. लोगों ने फुसफुसाना शुरू कर दिया था. तब एक दिन उन्होंने इसी काली थान पर पंचायत बुलायी थी. हाथ जोड़ कर बोले, 'पंचो, ई बात है, बताओ का करी?'. पतरका गांव की पुरनियां थीं, उन्होंने परासचित करने की राय दी. एक बकरा और कड़ाही चढ़ाने की मानता मानी गयी. जैसे-जैसे मानता का दिन नज़दीक आता गया ओझा पूरा इंतज़ाम करने में व्यस्त हो गये. बकरा ढूंढ़ना था, जिसे कोई घाव न हो. कड़ाही, चूल्हा, लकड़ी, नयी धोती, आटा, घी, अगरबत्ती, फूल, लवांग—सब चीज़ों का इंतज़ाम तो उन्हें ख़ुद ही करना था. किसी और से कह भी नहीं सकते थे. परासचित का मामला जो ठहरा.

मानता वाले दिन, इसी नीम के पेड़ के नीचे लोग इकट्ठा हुए थे. गांव भर के लोग. ओझा नहा कर नयी कोरी धोती पहन कर तैयार थे. बकरे को भी नहलाया गया था. ओझा ने अपने हाथों से नीम चौरा साफ़ किया था. सब कुछ वे ख़ुद कर रहे थे. पूजा के बाद वे पूड़ियों का प्रसाद बांटने वाले थे. वातावरण में एक तनाव–सा व्याप्त था. जतन बहू एक तरफ़ अपराधिनी की मुद्रा में बैठी थीं.

पहले तो ओझा ने फूल और लवांग चढ़ाया फिर जल. और फिर वे उठ कर खड़े हो गये. उन्होंने एक पैर आगे जमा लिया और दूसरा थोड़ा पीछे. अब वे थोड़ा-सा झुक कर खड़े हुए और 'जय काली माई की.'

'जय काली माई की' कहते हुए झूमने लगे. थोड़ी देर बाद उन्होंने हाथों को आगे–पीछे झुलाना और आगे की ओर जोर से ताली मारना शुरू किया. उनके हर काम में तेज़ी आती गयी और 'जय काली माई' का उद्घोष तीव्र होता गया. लोग सांस थाम कर बैठे रहे.

कुछ ही देर बाद उनका हाथ इतनी तेज़ी से आगे-पीछे चलने लगा कि लगा कि उनके एक नहीं कई हाथ हों. काली माई परगट हो चुकी थीं. अब ओझा इस तरह से बोल रहे थे जैसे वे ख़ुद काली मां हों. उनकी आवाज़ बदल गयी थी. लोग भाग–भाग कर उनकी चरण धूलि ले रहे थे. भल्लू ने गड़ांसा उठाया और घच्च से बकरे की गर्दन उड़ा दी. रक्त का फव्वारा उठा और ओझा के चरणों पर गिरा.

ओझा जोर से गरजे, 'चल रे, तोहरे गांव केर सीमा बांधी देई', और एक ओर तेज़ी से भागे. गांव के दो हृष्ट-पुष्ट युवक लोटे में जल लेकर ओझा के पीछे–पीछे भागे. ओझा झाड़-झंखाड़ और कांटों-खूंटियों की परवाह किये बगैर भाग रहे थे. वे दोनों युवक बहुत पीछे रह गये. गांव की सीमा पर पहुंच कर वे लौट पड़े. युवकों ने वहीं पर जल गिराया और लौट आये.

अब 'काली माई' लोगों के सवालों का जवाब दे रही थीं. जतन बहू ने पूछा, 'माई, हम का करी?' 'काली' गरजीं, 'गांव छोड़ी दे, नाहीं त बहुत बिपदा आये'. जतन बहू गिड़गिड़ाई, 'माई हमार केउ नाही बा. हम बड़ी पापिन अही माई. मुला हम बांझ नाहीं अही. अब हमका केउ बांझ नाहीं कही सकत'. 'काली' बोलीं, 'आपन गदेला हमका चढ़ाई दे. उहइ हमार पूजा करे. जा रे तोहे माफ़ कीन.' जतन बहू ने 'मां' की चरण धूलि ली और गदगद भाव से बैठ गयीं. लोग ज़्यादा ख़ुश नहीं थे, पर 'काली माई' का हुकुम था.

सवालों की संख्या कम हो रही थी. अचानक ओझा गरजे, 'हम जात अही रे' और धम्म से भहरा पड़े थे. काफ़ी देर बाद वे मूर्छा से जागे. थोड़ा डगमगाने के बाद उन्होंने बड़े शांत भाव से पूड़ियां छान कर सबको बांटी. जतन बहू को गांव ने स्वीकार कर लिया. कुछ दिनों बाद उसे एक लड़का हुआ. उसका नाम रखा गया 'कालिका प्रसाद'. जतन बहू को सबने 'कालिका क माई' कहना शुरू कर दिया.

अब तो कालिका क़रीब पच्चीस साल का हो गया है. वह ओझा के साथ ही हमारे खेतों में काम करता है. सुनते हैं कि ओझा धीरे-धीरे उसे ओझाई भी सिखा रहे हैं.

एक बात और. उसी पूजा के लिए ओझा ने हम लोगों से साठ रुपये उधार लिये थे. आठेक सालों में धीरे– धीरे वे बढ़ कर हज़ार रुपये हो गये तब जाकर इन लोगों को होश आया. अब ओझा के भाई जो पैसे भेजते हैं उससे सालाना ब्याज, जो तक़रीबन चार सौ रुपये होता है, चुकता होता रहता है. साथ में कालिका हमारे यहां काम करता है.

सुनते हैं कि बहुत लोग ओझा को सिखाते रहते हैं कि वे ब्याज देना बंद कर दें और कालिका को घर ले जायें. पर ओझा की ईमानदारी माननी पड़ेगी. वे लोगों की बातों पर बिलकुल ध्यान नहीं देते.

भू. पू. निदेशक वी. ई. सी. सी. कोलकाता,
सी- ३/४४, केंद्रीय विहार,
वी. आई. पी. रोड, कोलकाता- ७०००५२.
ईमेल : srivastava.dinesh.kumar@gmail.com

कविता

सत्यदेव संवितेंद्र

कुछ तो कह दो अंधकार से
थोड़ा तो कुछ,
क्यों भीतर की दीवारों को
छू लेते हो
उन पर तो अधिकार
सिर्फ़ है मेरा,
फिर क्यों तुमने भीतर डाला डेरा ?

पंच-तत्व की पहरेदारी
इस जगती की
उस पर धरती, पवन-अगन, जल
नभ की दावेदारी
ले लो चाहे यह सब
अपने ही छल-बल से
आत्म-तत्त्व को तुमने क्यों आ घेरा ?

मेरा जो है, मेरा अपना
बस, इत्ता-सा
उस पर कैसे हो सकता है अब हक़ तेरा ?

सिर्फ़ नहीं कुछ कहने को ही
कह देता हूं,
प्रश्नों से बतियाता मैं तो
खोज रहा हूं
जाने कब से
अपने भीतर अपना एक सवेरा.

उद्भव, ४५, आदिनाथ नगर,
पीपली सर्किल, जोधपुर- ३४२०१४
(राजस्थान)

बनते-मिटते रिश्ते

डॉ. कुंवर प्रेमिल

सावित्री का छोरा गिर गया.

'दौड़ो, जामुन के पेड़ से सावित्री का छोरा गिर गया है.'

बाहर से आती आवाज़ें सुनकर पतई गांव में अफ़रा-तफ़री मच गयी. जो देखो वही जमनेरी की तरफ़ भागा चला जा रहा था.

जमनेरी में जामुन के अनेकों दरख़्त थे. गांव के बच्चे दिन भर जामुन के पेड़ों के इर्द-गिर्द मंडराते रहते. जिनसे पेड़ चढ़ते बनता वे पेड़ चढ़कर मीठे-मीठे फलों का रसास्वादन करते. ये आवाज़ें जमनेरी से आ रही थीं.

सावित्री का छोरा जनमू अभी-अभी पेड़ चढ़ना सीखा था. बंदरों के माफ़िक डालियों से डालियों पर उछलता. पकड़ी डाल उखड़ गयी और वह गेंद के माफ़िक लुढ़कते हुए नीचे आ गिरा. नीचे खड़े लड़कों ने हल्ला मचा दिया. सावित्री का छोरा गिर गया है. दौड़ो... सावित्री का छोरा गिर गया है.

अकेला जनमू ही नहीं गिरा था इन पेड़ों से. कई लोग इन पेड़ों से गिरकर हाथ-पैर तुड़ा बैठे थे. ग्रामवासी दूर के अस्पताल जाने से घबराते थे. इतने पैसे किसके पास थे जो डॉक्टर की फ़ीस और दवाइयों का ख़र्चा उठा पाते. लाठी टेक-टेककर जीवन नैया खेने के लिए विवश थे बेचारे.

दयाराम पास के पेड़ों पर चढ़कर जामुन खा रहा था. वह झोले में जामुन फल तोड़कर रखता जाता था. नीचे उतरने के बाद फल की आस लगाये बच्चों में बांट देता. वह सभी को पेड़ चढ़ने से मना भी करता रहता था.

बच्चे तो बच्चे, दयाराम की सुनता कौन? वह तो ख़ुद ही दूसरों के रहमोकरम पर पल रहा था. उसका न घर-द्वार, न मां-बाप न कोई सगे संबंधी. जो थे बस यही गांव वाले थे. वर्षों पहले साधुओं की आयी टीम में बच्चा साधु था वह. साधु दल एक दिन मुंह अंधियारे उसे सोता हुआ छोड़कर भाग निकला. तब से वह इसी गांव का होकर रह गया था. गांव वाले ही उसके मां-बाप थे. गांव वालों ने उसे दिल से अपना लिया था.

वह गांव वालों की दया का मोहताज़ था, इसलिए अपने-आप उसका नाम दयाराम पड़ गया था. समूचा गांव उसका मालिक और वह सारे गांव का नौकर. जिसने जो दिया खा लिया, पहन लिया, ओढ़कर कहीं भी सो लिया. गांव वाले अक्सर उसे अपने खेतों के मचान पर सुलाते और इस तरह फ़सलों की चौकीदारी का भी पैसा बचा लेते.

आज कहीं से भी रोटी खाने के लिए बुलावा नहीं आया तो दयाराम अपनी भूख बुझाने के लिए जमनेरी पहुंच गया. पेड़ से गिरे जनमू के पास मदद के लिए सबसे पहले दयाराम ही पहुंचा. पहले तो उसने पेड़ पर चढ़े गांव के सभी छोरों को डांटकर पेड़ों से उतारा फिर जनमू को ढाढ़स बंधाने लगा. पत्ते वाली टहनियां तोड़कर वह उसे हवा भी करने लगा. तब तक उसकी मां सावित्री भी रोती-चिल्लाती वहां पहुंच चुकी थी. छोरा बुरी तरह बिसूर रहा था.

सावित्री का रो-रोकर बुरा हाल था. अपने लाल को गोदी में लिटाकर जार-जार रोये जा रही थी. जनमू अपनी मां के साथ दुगनी रफ़्तार से रोये जा रहा था. तब तक गांव का बूढ़ा महीराम अपनी लाठी टेकता वहां पहुंच गया था. महीराम की टांग भी बचपन में जामुन के पेड़ पर से गिरने से टूट चुकी थी.

महीराम ने बांस की पतली-पतली टहनियां काटकर जनमू के टूटे हाथ के आसपास बांध दी थीं. उपरांत वह सावित्री से बोला — जंगल जा रहा हूं बेटी 'हथजुड़ी' लाने.

३१ मार्च १९४७, टुइयापानी जिला-नरसिंहपुर (म. प्र.)

: प्रकाशन :

धर्मयुग, कादंबिनी, सा. हिंदुस्तान, सारिका, मुक्ता, सरस सलिल, चंपक, सुमन सौरभ, पराग, लोटपोट, कथाबिंब, संयोग-साहित्य, गृहशोभा, प्राची, वीणा, भाषा, हिमप्रस्थ, गगनांचल, परिंदे में कहानियां, परिचर्चाएं, लघुकथाएं (कुल ढाई सौ से ज़्यादा लघुकथाएं लिखित एवं प्रकाशित), व्यंग्य एवं फ़ीचर सर्विस, शिकार कथाएं. बालकथाएं.

चिनम्मा, पाचवां बूढ़ा, आशंकाओं के नागपाश (कहानी-संग्रह), अनुवांशिकी, अंततः (लघुकथा-संग्रह), प्रदक्षिणा (बाल किशोर उपन्यास), कुंवर प्रेमिल की इकसठ लघुकथाएं (लघुकथा संग्रह), हरीराम हंसा, किस्सा कहानी

: संपादन :

'प्रतिनिधि लघुकथाएं' वार्षिकी (वर्ष २००९-२०१८) तक अनवरत प्रकाशन-संपादन, 'ककुभ' अनियतकालीन लघुकथा प्रकाशन योजना (२००८,२०१२,२०१३,२०१५), घर आंगन और गिरगिटान (वर्ष २०१२), कहानी संकलन, अतिथि संपादक - 'झंकृति', 'अक्षर खबर' लघुकथा अभिव्यक्ति अंक (जनवरी-मार्च २०१३) अतिथि संपादक- प्राची लघुकथा विशेषांक दिसंबर-२०१७

: अनुवादः

लघुकथाओं का मराठी अनुवाद/प्रकाशन. निमाड़ी लोकबोली में लघुकथाओं का अनुवाद/प्रकाशन. गुजराती में जंगल कथाएं, अनूदित एवं प्रकाशन.

: विदेश :

नेपाल भ्रमण.

: पुरस्कार :

'कथाबिंब' पत्रिका में कमलेश्वर स्मृति पुरस्कार प्राप्त पांचवां बूढ़ा को श्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार. निराला साहित्य एवं संस्कृति संस्थान बस्ती (उ. प्र.) द्वारा राष्ट्रीय गौरव सम्मान, १९१३. वर्तिका द्वारा हरिशंकर परसाई सम्मान. विक्रम शिला विद्यापीठ द्वारा विद्या वाचस्पति सम्मान वर्ष २०१३. हिंदी साहित्य शिरोमणि, मानद उपाधि, साहित्य मंडल श्रीनाथ द्वारा (राज.) २०१५.

: सम्मान :

साहित्यश्री, कथाश्री, संपादक सरताज जबलपुर नगर निगम एवं पाथेय प्रकाशन जबलपुर द्वारा पुरस्कृत, आकाशवाणी से अब तक ७० कहानियां प्रसारित एवं प्रकाशित.

भारतीय सर्वेक्षण विभाग से सेवानिवृत्त.

उससे कुछ दिनों में धीरे-धीरे हड्डी जुड़ जायेगी.

सावित्री रोते हुए बोली — 'पर बाबा, कई दिन लगेंगे इसमें, तब तक छोरा कैसे रह पायेगा भला. यह तो ग़रीबी में गीला आटा जैसा हो गया है. जनमू का बाप होता तो कुछ करता, मैया री, अकेली कैसे निपटूंगी रे.'

गांव में फेरी लगाकर कपड़ा बेचने वाला पंजाबी भी वहां आ खड़ा था. उससे सावित्री का रोना देखा नहीं जा रहा था. बोला — 'न हो तो, इसे साईखेड़ी के अस्पताल ले जाओ. पिछले महिने ही तो वहां एक छोटा-सा अस्पताल खुला है. डॉक्टर अच्छा होशियार आदमी है और नर्स तो बहुत अच्छी, बहुत मीठा बोलती है.

'पर मैं अकेली औरत, कैसे ले जाऊंगी इसे. जब से ब्याही आयी, तबसे इस गांव के अलावा दूसरा गांव नहीं देखा है मैंने.' सावित्री अपनी मुश्किल बताकर फिर रो पड़ी.

दयाराम बोला — 'मैं जाऊंगा इसके साथ बहिन. तू फ़िक्र मत कर.'

हालांकि दयाराम भी जबसे इस गांव में आया, तबसे किसी दूसरे गांव नहीं गया. 'जैसे राखे राम वैसे ही रहिए, सीताराम कहिए, सीताराम कहिए,' ही उसका जीवनाधार था.

ख़ैर, ब्यारु के बाद एक बैलगाड़ी सावित्री के घर के सामने आ खड़ी हुई. भेरवू अपनी बैलगाड़ी लेकर आ गया था. गांव की एक यही तो तारीफ़ है, कष्ट में सभी एक दूसरे की मदद करते हैं. दूसरे के दुख को अपना दुख समझते हैं.

सभी ने चंदा करके आटा-दाल, हल्दी, मिर्ची, तेल और नमक, लकड़ी-उपले इकट्ठे कर बैलगाड़ी में लाद दिये

थे. सावित्री गांव बाहर तक बैलगाड़ी के पीछे रोती-रोती चली आयी थी.

दयाराम बोला — 'तू मेरी धर्म की बहिन है जा घर लौट जा. छोरे को ठीक कराकर ही मैं घर लौटूंगा.'

उसके बाद दयाराम भी रो पड़ा.

गाड़ीवान बोला — 'जल्दी करो दया, रात का पहला पहर बीत रहा है. सारी रात बैलगाड़ी चलेगी, तब कहीं साईखेड़ी पहुंचेंगे.' दयाराम ने अपनी धर्म बहिन सावित्री के पैर छुए फिर गाड़ी में जा बैठा. अस्पताल जाकर वह कैसे-क्या करेगा, इसी भय से अंदर ही अंदर भयभीत हुआ जा रहा था.

ठकर-ठकर की आवाज़ करती बैलगाड़ी चली जा रही थी. जनमू रह-रहकर दर्द से तिलमिला उठता था. दयाराम उसके माथे पर हाथ रखकर धीरे-धीरे पुचकार रहा था.

एकाएक मेखू बोला — 'सावधान! दया हियां शेर दाऊ का पहरा रहता है. संभलकर बैठियो. अब मैं बैलों को जोर से टिटकार रहा हूं.'

शेर का नाम सुनते ही दयाराम के शरीर में सिहरन-सी दौड़ गयी. उसने जनमू को मज़बूती से पकड़ लिया. वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि जनमू को कुछ न हो, भले ही शेर उसे खा जाये. जनमू को कुछ हो गया तो गांव वालों से क्या कहेगा और वह सावित्री बहिन को क्या मुंह दिखायेगा.

ख़ुदा न खास्ता, ऐसा कुछ घटित नहीं हुआ. आठ बजते-बजते बैलगाड़ी अस्पताल के सामने आ खड़ी हुई. कुल जमा एक नर्स एक डॉक्टर वाला अस्पताल था यह. दयाराम ने गाड़ीवान की मदद से उसे अस्पताल की दहलान में लिटा दिया. रात भर जनमू कभी जोर से कभी धीरे से चिचियाता रहा था.

ग्यारह बजते-बजते डॉक्टर अस्पताल पधारे. पीछे-पीछे नर्स मैडम भी चली आ रही थी. डॉक्टर बोले — 'एक बोतल ख़ून चढ़ाना है, लाओ अब्बी के अब्बी.'

डॉक्टर की रौबीली आवाज़ सुनकर दयाराम का ख़ून सूख गया. ख़ून कहां से लायेगा? ख़ून कौन देगा? ऐसे न जाने कितने अनुत्तरित सवाल उसके ज़ेहन में कौंध गये थे.

'ख़ून कहां मिलेगा डॉक्टर साब.' — दयाराम ने हाथ जोड़कर डॉक्टर से जानकारी लेनी चाही.

अब जाकर कहीं डॉक्टर का ध्यान इस अज़ीबोग़रीब आदमी की ओर गया. मैले-कुचैले कपड़े, फटा पाजामा, सिर पर गंदी–सी पगड़ी, चमरौधों के फटे-पुराने जूते, बढ़ी दाढ़ी, पीले दांत और नाखून बड़े-बड़े नुकीले.

डॉक्टर ने दयाराम का ऊपर से नीचे तक का निरीक्षण करते हुए कहा — 'इसी वनमानुष का ख़ून जांचो, मिल जाये तो इसका ख़ून लड़के को चढ़ा दो.'

अब यह सोचा जाये कि दयाराम को कैसे काबू किया होगा और कैसे उसका ख़ून जनमू को चढ़ाया होगा? ख़ैर, यह तभी संभव हुआ जब उसे गाड़ीवान की मदद से बांधकर रखा गया. शाम तक ख़ून चढ़ा दिया गया. प्लास्टर भी चढ़ा दिया गया. गोली-ट्यूब देकर शाम तक अस्पताल से जनमू की छुट्टी भी कर दी गयी. दिन भर भूखे रहकर ख़ून दान करने के बाद दयाराम अपने आप को कमज़ोर महसूस कर रहा था. गाड़ीवान ने अस्पताल परिसर में ही गक्कड़ भर्त्ता बनाकर ख़ुद खाया, दया और जनमू को भी खिलाया. रात भर फिर बैलगाड़ी चली, तब कहीं सुबह-सुबह गांव पहुंच पायी. गांव पहुंचते ही मेखू ने दयाराम की तारीफ़ के पहाड़ खड़े कर दिये.

उसके बाद गांव वालों का अस्पताल से सीधा संपर्क जुड़ गया. हर मरीज़ के साथ दयाराम होता. ज़रूरत पड़ने पर दयाराम का ख़ून चढ़ा दिया जाता.

एक दिन डॉक्टर बोला — 'यह अजीब संयोग है, जो गांव के हर मरीज़ से तुम्हारे ख़ून का मिलान हो जाता है. आश्चर्य है जी ये तो?' दयाराम मासूमियत के साथ बोला — 'मैं क्या और मेरी औक़ात क्या है जी. मैं तो गांव भर का नौकर हूं. सबके घर की रोटियां खाता हूं. इनकी रोटियों से बना ख़ून इन्हें ही चढ़ा देता हूं. इसमें मेरा कुछ नहीं है मालिक.'

डॉक्टर अचंभित होकर बोला — 'तुम ग्रेट हो दया. सबको अपना ख़ून देकर जिलाते हो. अगले माह विदेश में मेरी स्पीच है, मैं उसमें तुम्हारा ज़िक्र करूंगा. तुम्हें यश मिलेगा और कुछ इनाम इकराम भी... तुम्हें लूट लेने का जी करता है.'

दयाराम की समझ में कुछ आया, कुछ ऊपर से निकल गया. उसे महसूस हुआ कि डॉक्टर साहब कोई साधारण इंसान नहीं हैं. दयाराम जैसे दो कौड़ी के आदमी को इनाम दिलायेंगे. जिसे दो रोटी नसीब नहीं है उसे सम्मान

दिलायेंगे. यह उनका बड़प्पन नहीं है तो और क्या है?

समय बदला, दृश्य बदला. दयाराम अस्पताल में भरती है. खेत में सोते समय किसी भेड़िए ने उस पर हमला कर दिया. चेहरा नोंच लिया. एक हाथ भी चबा लिया. शरीर में नाम मात्र का ख़ून शेष रह गया.

डॉक्टर चीख़कर बोला — 'ख़ून चाहिए, अब्बी के अब्बी.'

दयाराम ने चेतनाशून्य होते-होते डॉक्टर की आवाज़ सुनी तो और भी घबरा गया. कौन देगा उसे ख़ून? गांव में कौन उसका सगा है. किसे पड़ी है जो उसके लिए गांव से अस्पताल आयेगा और उसे ख़ून देकर मरने से बचा लेगा.

सुबह-सुबह मुर्गे की बांग सुनकर दयाराम की मूर्च्छा खुली. उसने अपने आसपास का जायज़ा लिया. उसे ख़ून चढ़ाया जा रहा था. ख़ून देने वाला सावित्री का छोरा जनमू था. कमरे के बाहर भी गांव के बहुत से लोग खड़े थे. उनकी बातचीत उसके कानों में पड़ रही थी. यह नीम वाले दादा, जामुन वाले काका, बड़े भैया, ननकू-ढमकू सभी तो थे. पूरा गांव अस्पताल में खड़ा था उस जैसे नाचीज़ के लिए. भई वाह! यह तो कमाल हो गया.

जामुन वाले काका बोले — 'घबराना मत दयाराम, जितना ख़ून चाहिए उतना देंगे हम सब. अरे ख़ून की नदियां बहा देंगे.'

दयाराम सोच रहा था. मैं बेकार ही अपने को अकेला महसूस कर रहा था. पूरा गांव तो मेरे साथ है. अब तो इतनी हिम्मत आ गयी है कि मैं भेड़िया तो क्या शेर से भी भिड़ जाऊंगा. वह तो सोते में भेड़िया सफल हो गया. वरना चीथड़े कर देता उसके. अरे मैं व्यर्थ ही अपना गांव, अपने मां-बाप, अपने भाई-बहिन के लिए रोता था. ये गांव वाले ही तो उसके अपने हैं. उसे तो अपने मां-बाप, गांव-शहर का कुछ भी अता-पता नहीं है. न जाने उसे कौन सा साधु अपने साथ ले आया था और न जाने क्यों वे साधु उसे सोता हुआ छोड़कर भाग भी गये थे.

इन गांव वालों से मेरा आत्मीय रिश्ता बन गया है जो किसी भी ख़ून के रिश्ते से बड़ा और मज़बूत है.

थोड़ी देर के बाद डॉक्टर ने दया से कहा — 'अब तुम ख़तरे से बाहर हो दयाराम. देखो, तुम्हारी बहिन सावित्री तुम्हें लेने आयी है.'

जनमू बोला — 'दया मामा, तुम अब खेतों में नहीं

हमारे साथ ही रहोगे. मेरा कोई मामा तो है नहीं. आज से तुम्ही मेरे सगे मामा हो. यह शरीर तुम्हारा ही बचाया हुआ है.'

दयाराम की आंखों में आंसू थे. ख़ुशी के आंसू. उसे बहिन और भांजा एक साथ मिल गये थे. यह नया रिश्ता किसी भी पुराने रिश्ते से सर्वोपरि था. जनमू और स्वयं उसका ख़ून एक दूसरे के शरीर में हिलोरें ले रहा था. गांव प्रस्थान करते समय डॉक्टर साहब स्वयं चलकर दयाराम की गाड़ी के पास आये. दयाराम को दवाइयां देते हुए बोले — 'दयाराम सरकार की तरफ़ से इनाम स्वरूप तुम्हें एक बड़ी रक़म मिली है. यह तुम्हारे ख़ून का ही कमाल है जो पूरे गांव को रक्तदान-महादान का मर्म सिखा गया है.'

दयाराम कभी डॉक्टर साहब को तो कभी अपने गांव वालों को पूरे गर्व के साथ देख रहा था. उसके दामन में एक साथ कितनी ही ख़ुशियां भर गयी थीं.

एम.आई.जी-८, विजयनगर,
जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.).
मो. : ९३०१८२२७८२/८९६२६९५७४०

गुरू दक्षिणा

मनोज कुमार 'शिव'

'चल ओए जग्गेया! गड्डी से उतरकर पिछले टायरों में पत्थर लगा दे! मैं जरा हल्का होकर आता हूं.' करतार ने दो-चार सेल्फ़ मारकर ट्रक का इंज़न बंद किया और नीचे उतरकर उस जगह का मुआइना करने लगा कि ज़मीन लोडिंग ट्रक का भार उठाने लायक है भी या नहीं.

'मैं जट यमला पगला दीवाना हो रब्बा...' ऊंची आवाज़ में गाते हुए करतार लोहे की रॉड टायरों पर मारकर उनमें हवा का प्रैशर चैक करने लगा.

'ओए तुझे सुणया नहीं..? टौणा हो गया है क्या? करतार की आवाज़ में हल्का ग़ुस्सा उतर आया था.

'आया उस्ताद! अभी आया!' जग्गी ट्रक से उतरने लगा. हड़बड़ाहट में पैर सीट से यूं उलझा कि ज़मीन पर औंधे मुंह गिरने से बाल-बाल बचा. मगर ख़ुद को बचाने में उसके दोनों हाथ मिट्टी से सन गये. झटपट हाथों को झाड़कर उसकी निग़ाहें टायरों के पीछे लगाने के लिए पत्थरों को तलाशने लगीं. एक पत्थर मिल भी गया. मन ही मन एक ख़ुराफ़ाती ख़्याल आया कि उठाकर दे मारे इस पत्थर को करतार के सर पर... थोड़ी देर याद करेगा अपनी अम्मा को सर पकड़ कर... मुआ जब देखो डांटता रहता है.. खाणे पड़ा रहता है बेवजह...!

'क्या हुआ बे? मिला नहीं पत्थर तुझे? बड़ा निकम्मा है तू तो! करतार ने जंगल को जाते-जाते अचानक पलटकर जग्गी को देखा.

'मिल गया उस्ताद... मिल गया... अभी लगा देता हूं...'

जग्गी बुरी तरह सकपका गया मानो करतार ने जग्गी के मन में आये ख़्याल को जान लिया हो. भागते हुए जग्गी ने पत्थर उठाया और टायर के पीछे लगा दिया.

करतार ने ट्रक कहां लाकर रोका था, जग्गी को उस जगह का कुछ भी अंदाज़ा नहीं था. एकदम सुनसान सड़क और सड़क के दोनों तरफ़ ऊंचे-ऊंचे पेड़, घनी झाड़ियां. ऊपर से जंगली जानवरों के होने का ख़तरा. डर के मारे जग्गी की तो घिग्गी बंध गयी थी.

वह उचक-उचक के देखकर यह सुनिश्चित कर रहा था कि अगर कोई जंगली जानवर उस पर झपटे तो वह जान बचाने के लिए करतार की तरफ़ भाग सके. डर गया था जग्गी बुरी तरह से और डरना लाज़मी भी तो था. इतना घना जंगल और वो ठहरा मासूम बच्चा.

जग्गी एक चट्टान पर जाकर बैठ गया था और जग्गी के मन में डर. यकायक उसके कानों में कुछ आवाज़ें पड़ीं. सूखे पत्तों की चरमर..चरमर..जैसे जंगल की तरफ़ से उसकी ओर कोई चीज़ बढ़ रही हो. जग्गी फुर्ती से उठकर करतार की तरफ़ भागने को तैयार था कि उसके कंधे पर किसी चीज़ ने ज़ोरदार झपट्टा मारा.

'उस्ताद... उस्ताद... बचाओ...'

'हा हा हा हा.. तू तो बड़ा डरपोक है बे... शेर दा बच्चा बन जा... शेर दा...'

करतार ने डर से कांपते हुए जग्गी की पीठ ठोंकी. जग्गी की तो जैसे जान ही निकलने वाली थी. हलक सूख गया था. पसीने की बूंदें माथे पर चिहुंककर उसके डर को बयां कर रही थीं. इतना तो वह तब भी नहीं डरा था जब एक बार सपने में उसने काली चुड़ैल को देख लिया था जो उसकी छाती पर बैठ कर उसका गला दबाने ही वाली थी.

जग्गी ने दोनों तरफ़ के पत्थरों को हटा दिया.

'आ जा चलें जग्गेया अभी बघेरी बहुत दूर है', कहते हुए करतार ड्राइवर सीट वाली ताक्की खोलते हुए

ट्रक में चढ़ गया.

ट्रक ड्राइवर करतार की उम्र लगभग पचास-पचपन वर्ष थी. ठिगना क़द, धूप में रहकर रंग लगभग काला हो गया था, रोबदार चेहरा, बड़ी-बड़ी मूछें, माथे पर दायीं तरफ़ एक गहरे घाव का निशान, शायद कभी टांके लगे होंगे. क्या पता कभी किसी ट्रक वाले के साथ झगड़ा हुआ हो. उसके कंधे पर नीले रंग का तंबा हमेशा रहता. कभी उसकी पगड़ी बना लेता तो कभी यूं ही कंधों पर सजाए रखता.

गंदे-गीले हाथ उसी से पोंछता. बीड़ी पी-पीकर दांतों का रंग काला हो चुका था. करतार जब भी कभी हंसता तो यूं लगता मानो मुंह में दांत न हो कोयले के छोटे-छोटे अधजले टुकड़े हों. सिर के अधिकतर बाल सफ़ेदी लिये उसकी उम्र की चुगली कर रहे थे जिन पर वह भोलू नाई की दुकान पर जाकर रंग चढ़वाता था.

करतार ने ट्रक स्टार्ट किया. लोडिंग ट्रक धीरे-धीरे बघेरी की तरफ़ बढ़ने लगा.

'गड्डी जांदिए छलांगा मारदी... मैंनूं याद आदीं मेरे यार दी...' करतार अपने मोटे गले से लय में गाने की पुरज़ोर कोशिश कर रहा था.

गाड़ी लोडेड थी. गाड़ी का इंज़न चढ़ाई में पूरा जोर लगाकर काम कर रहा था यह उसकी आवाज़ से पता चल रहा था. उस वक़्त शाम के तीन बजे थे. पास ही के एक विद्यालय में छुट्टी होने पर बच्चों की भीड़ सड़क पर निकल आयी थी. विद्यार्थी आपस में मस्ती करते, हंसी-ठिठोली करते जा रहे थे. हर बच्चे के गले में उनके आइडेंटिटी कार्ड लटक रहे थे. पीठ पर बैग उठाये मस्तमौला बचपन. कुछ बस का इंतज़ार कर रहे थे तो कुछ पैदल अपने यारों के साथ घर की ओर बढ़ रहे थे. छोटे बच्चों को उनके परिजन लेने आये थे. बहुत सुंदर लग रहे थे सब के सब. ग़ज़ब की ऊर्जा से भरे.

बच्चों को देखकर जग्गी के चेहरे पर मीठी मुस्कान तैर आयी थी. ट्रक की ताक्की के शीशे से झांकता बालमन उन बच्चों में ख़ुद को तलाश कर रहा था. उनकी हंसी-ख़ुशी में अपना वज़ूद ढूंढ़ रहा था.

'जग्गेया! एक बीड़ी तो दे सुलगाकर', करतार को बीड़ी पीने का बड़ा मन कर रहा था.

जग्गी अभी भी ताक्की से सड़क पर जा रहे बच्चों को देख रहा था.

बी. एस. सी (मेडिकल), एम. बी. ए. (वित्त एवं मार्केटिंग)

: प्रकाशन :

हिमप्रस्थ, कथादेश, परिकथा, गिरिराज साप्ताहिकी, शब्द मंच जैसी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में. साझा संग्रह : दिल्ली से प्रकाशित 'भारत के प्रतिभाशाली रचनाकार', 'हम-तुम' संपादक जितेंद्र चौहान जी की लघुकथाएं में रचनाएं प्रकाशित, एक कविता संग्रह शीघ्र ही प्रकाश्य.

: संस्था :

बिलासपुर लेखक संघ (हि. प्र.) के सदस्य.

: सम्मान :

बिलासपुर लेखक संघ (हि. प्र.) द्वारा आशुतोष नवोदित लेखन पुरस्कार से सम्मानित.

: प्रसारण :

दूरदर्शन, शिमला से कविता पाठ का प्रसारण एवं हिमालच प्रदेश में कवि सम्मेलनों में भागीदारी.

: संप्रति :

हिमाचल प्रदेश ग्रामीण बैंक में कार्यालय सहायक के पद पर कार्यरत.

उसका मासूम मन तो उन बच्चों के साथ मस्ती करने निकल चुका था.

'ओऐ छोकरे! ध्यान कहां है तेरा? बीड़ी दे मुझे जल्दी.'

'अच्छा उस्ताद! अभी देता हूं', जग्गी सामने वाली सैल्फ पर बीड़ी का बंडल ढूंढ़ने लगा. वहां रखे अख़बारों को एक तरफ़ हटाकर बीड़ी बंड़ल बमुश्किल खोजा. माचिस की तीली से बीड़ी जलाने की कोशिश की. चलती गाड़ी में हिचकोले खाने से माचिस की तीली नहीं जल पायी. दोबारा कोशिश की तो तीली टूटकर नीचे गिर गयी.

करतारा चला तो गाड़ी रहा था मगर ध्यान जग्गी पर था.

'ओए खोतेयां! तुझे कुछ आता भी है करने ...

हाथ में पकड़ रखी है ये अपनी अम्मा! मुंह में डाल इसे तब माचिस से सुलगाकर दे मुझे... जल्दी कर... निकम्मा कहीं का...'

करतार की आंखों में जैसे ख़ून उतर आया था.

'पर उस्ताद मैं बीड़ी नहीं पीता.'

'पीता नहीं तो पीनी पड़ेगी.. ऐसे नहीं बन जाना तू बड़ा डरैबर..'

करतार ने एक तीखा मोड़ काटने के बाद स्टैरिंग को सीधा करते हुए कहा.

जग्गी ने न चाहते हुए भी बीड़ी अपने होठों में फंसायी. माचिस की तीली को अपनी दोनों हथेलियों को जोड़कर बनायी गोलाकृति में जलाया. धीरे-धीरे होठों में दबायी बीड़ी को जलती तीली के पास लाकर सुलगाने की कोशिश करने लगा.

'मार अब एक ज़ोरदार कश तब जाकर सुलगेगी ये तेरी...'

करतार ने अपनी हंसी दबाते हुए कहा. मासूम जग्गी ने जैसे ही एक जोरदार कश मारा तो यूं लगा मानो गर्म धुंए का एक गुब्बार उसके फेफड़ों में जा घुसा हो. आंखों में पानी भर आया. मुंह का स्वाद बिगड़ गया. मानो उसने नीम के सौ पत्तों को एक साथ चबा डाला हो. बीड़ी करतार को थमाते ही जग्गी काफ़ी देर तक खांसता रहा. करतार ट्रक चलाते-चलाते कनखियों से जग्गी को देखकर चोरी-चोरी हंसता रहा.

बेचारा जग्गी आंखों में आंसू लिये बाहर की ओर देख रहा था. मानो जैसे सड़क पर गुज़र रहे किसी अपने को खोज रहा हो, जैसे कोई उसका अपना गुम हो गया हो जो उसे करतार की क़ैद से मुक्त कराकर अपने साथ ले जायेगा.

जग्गी ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उसकी ज़िंदगी इस तरह बदल जायेगी. परागपुर गांव का रहने वाला जग्गी अपने मां-बाप की सबसे बड़ी संतान था. गांव के ही स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था कि स्कूल बीच में ही छोड़ना पड़ा. कारण रहा पिता सुखिया की असमय मौत. सुखिया को शराब की लत लग गयी थी. जब देखो नशे में धुत रहता था.. बेवड़ा कहीं का... दिहाड़ी लगाकर जो कमाता उसकी दारू पी जाता.

गांव-बेड़े में सब उसे गालियां बकते, सुधर जाने की अकल देते मगर वह कहां माना. उल्टा गाली-गलौच पर उतर आता. मां-बहन की गालियां भला कौन सुनता. एक-दो बार तो पत्नी ने पिटने से बचाया था उसे.

जब लोगों ने उसे काम देना बंद किया तो दारू के लिए बीवी के गहने तक बेच डाले. और पैसों की ज़रूरत पड़ी तो पुश्तैनी ज़मीन को चौधरी के पास गिरवी रख दिया. चौधरी तो था ही अव्वल दर्ज़े का चोर. ज़्यादा बीघा ज़मीन गिरवी लेकर भी थोड़े पैसे देता था और फिर ब्याज पर ब्याज लगाकर सारी ज़मीन ऐंठ लेता था.

सुक्खू यानि सुखिया मज़दूरी करके अपना व अपने परिवार का गुज़ारा करता था. धीरे-धीरे उसने मिस्त्री का काम भी सीख लिया था. इलाक़े में उसका नाम होने लगा था. हर जगह उसके काम की तारीफ़ होती थी. मगर मिस्त्री धन्नू को सुक्खू की बढ़ती पूछ से ईर्ष्या होने लगी थी. उसका काम तो लगभग ठप्प ही हो गया था.

एक शाम काम ख़त्म होने पर धन्नू सुखिया के पास पहुंच गया. वह उसके काम की तारीफ़ करके उसे रिझाने लगा. धन्नू सुखिया को शराब का लालच देकर एक शाम अपने घर ले गया. पतीला भर कर मांस भी पका रखा था. सुक्खू को धन्नू की संगत पसंद आने लगी. मुफ़्त की दारू, मुफ़्त का मीट. कई दिन इसी तरह चलता रहा. सुक्खू हर रोज़ नशे में धुत्त होकर घर पहुंचता. जरा-जरा सी बात पर बिगड़ने लगता. हद तो तब हो गयी जब उसने पत्नी व बच्चों को पीटना शुरू कर दिया.

एक शाम धन्नू ने सुक्खू की शराब में न जाने क्या चीज़ मिलाकर पिला दी कि उसे दूसरे दिन ही होश आया. उसके बाद शराब पीने की जो लत लगी उसे चाह कर भी वह छोड़ नहीं पाया.

धन्नू जान बूझकर काम का बहाना बनाकर दूसरे गांव चला गया. सुक्खू का काम-धंधा सब हाथ से जाता रहा. उसने नियमित तौर पर काम पर जाना छोड़ भी दिया. सुबह से ही शराब पीना शुरू कर देता. घर आयी ख़ुशहाली भी गुम हो गयी. ग़रीबी ने ऐसा रंग दिखाया कि दो वक़्त की रोटी के भी लाले पड़ गये.

उस दिन काफ़ी बारिश हो रही थी. शाम का खाना

पक रहा था कि गांव के भोलाराम ने जग्गी और उसकी मां को ख़बर दी कि सुखिया गांव के पीछे वाली ढांक से नीचे गिर गया है. उन बेचारों पर तो मानो जैसे बिजली गिर गयी थी. दोनों बारिश में नंगे पांव ढांक की तरफ़ भागे. साथ में दो-चार गांव वाले भी. जग्गी की बहनें भी पीछे-पीछे गिरते लुढ़कते ढांक तक पहुंच गयीं. जब तक सुखिया को ढांक से ऊपर लाया जाता तब तक प्राण पखेरू उड़ चुके थे.

जग्गी पढ़ने में बुरा नहीं था. उसका सपना था कि बारहवीं कक्षा पास करते ही फ़ौजी बन कर भारत मां की सेवा करेगा. गांव के दो-तीन लड़के फ़ौज में भर्ती हुए थे. जब भी वह छुट्टियां काटने घर आते जग्गी उनके पास जाकर घंटों बतियाता. उनसे पूछता रहता कि कैसे वह भी उन जैसा सिपाही बनकर मातृभूमि की रक्षा कर सकता है. फ़ौजी लड़के जग्गी को अपनी नौकरी के बारे में विस्तृत जानकारी देते कि कैसे-कैसे वे फ़ौज में भर्ती हुए. उनकी दिनचर्या क्या रहती है...

दुर्गम स्थानों पर उनकी तैनाती होने पर किन–किन चुनौतियां का सामना करना पड़ता है... गणतंत्र व स्वतंत्रता दिवस आदि मौक़ों पर होने वाली परेड व बहादुरी पर मिलने वाले वीरता पुरस्कारों के बारे में बताते. जग्गी उनकी एक-एक बात बड़े चाव से सुनता.

जग्गी को सेना की वर्दी बहुत अच्छी लगती थी. वह अक्सर सपने में देखा करता कि वह बंदूक थामे सरहद पर तैनात है. दुश्मन पर कड़ी नज़र रखे हुए सीमा पर मुस्तैद सेना का एक जवान जिस पर देश को फ़ख्र है. जो शहादत का जाम पीने के लिए तैयार है.

वह बड़ा होकर अपना सपना साकार करने की कोशिश करता भी मगर सुखिया इस तरह पूरे परिवार को मंझधार में छोड़कर चला जायेगा यह किसी ने नहीं सोचा था. जग्गी का सपना टूटकर बिखर गया था. उसका पाठशाला जाना बंद हो गया.

उसकी मां गांव में जाकर जूठे बर्तन मांजती, रोज़गारी महिलाओं के बच्चों की देखभाल करके चार पैसे कमाती. मगर जग्गी को मां का इस तरह काम करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था. वो नहीं चाहता था कि उसकी मां दर-दर भटके, लुच्चे दो टके के गिद्ध-भेड़िए मानसिकता वाले लोगों के फ़र्श साफ़ करती रहे. उनके जूठे बर्तन मांजे. मगर वह क्या करता मज़बूर था.

एक दिन उसने कहा भी कि, 'मां! मत जाया कर दूसरों के घर काम करने. मैं ख़ुद कमा लूंगा.'

मां ने कहा, 'ज़हर दे दूं तुझे और तेरी बहनों को.'

कुछ देर तक चुप्पी छायी रही. फिर मां जग्गी को पकड़कर सुबकने लगी. बोली, 'क़सम खा कि कभी नशा नहीं करेगा. अपने बापू की तरह हमें बेसहारा नहीं छोड़ेगा दर-दर की ठोकरें खाने को.'

मां ने ही उसे करतार के पास भेजा था कि कुछ सीख जाये तो कल चार पैसे कमा कर परिवार का सहारा बनेगा. और कोई चारा भी तो नहीं था. करतार उनका दूर का रिश्तेदार था.

'फटाककक.' जोरदार आवाज़ हुई. जग्गी को लगा जैसे किसी ने ट्रक पर बम फोड़ दिया.

'ओहो... साला... टायर को भी अभी पंचर होना था.'

करतार ने ट्रक साइड में लगाया.

'सयापा... पता नहीं किस का थोबड़ा देखा था आज सुबह सुबह...' करतार झल्लाया.

'नीचे उतर जा लाटसाहब! टायर बदलने में मदद कर मेरी... बाबू नहीं है तू...' ड्राइवर सीट उठा कर करतार ने टूलबॉक्स से ज़ैक और एक लोहे की रॉड निकाली और ट्रक से नीचे उतरा. जग्गी ने दूसरी ताक्की से उतरकर झट से सड़क किनारे एक पत्थर ढूंढ़ा और ट्रक के पिछले टायर के नीचे लगा दिया.

करतार ने जब यह देखा तो हल्का मुस्कुरा दिया कि लड़का इतना भी बुद्धू नहीं है. घनचक्कर नहीं है उस कल के लड़के जैसा जो पिछली बार उसके साथ था. खोते ने आठ-दस महीने भी लगाये पर सीखा कुछ नहीं. ना स्टैरिंग क्लिरिंग का अता–पता, न गियर बदलने का अंदाज़ा, ना गाड़ी के पुरजों से आने वाली आवाज़ों पर ध्यान, ना कभी गाड़ी के बोनट पर ख़ुश होकर कपड़ा मारा कभी... बस एक नंबर का आलसी. चला गया है अब किसी दूसरी गाड़ी पर. वहां भी अपना टाइम ही गवांएगा. ड्राइवर बनने से तो रहा.' पर जग्गी में करतार को संभावनाएं दिख रही थीं.

करतार एक नंबर का ड्राइवर था. उसे गाड़ी की पूरी समझ थी. एक-एक चीज़ का पता. चलाता तो अपने मालिक की गाड़ी था पर रखरखाव ऐसा मानो उसकी अपनी गाड़ी हो. अपना रिज़क समझता था गाड़ी को. दोनों टैम

भगवान को धूपबत्ती करना उसकी दिनचर्या में शामिल था. सफ़र शुरू करने से पहले दोनों हाथ जोड़कर कुलदेवी मां नैना देवी जी को नमस्कार करने के बाद ही ट्रक के स्टैरिंग को हाथ लगाता था.

ड्राइविंग उसकी कमाई का साधन थी. इसी पेशे से उसने अपनी तीन बेटियों को पढ़ाया-लिखाया, दो की तो शादी भी कर दी. अपना दो मंज़िला मकान बना लिया था. इतना तो सरकारी मुलाज़िम भी नहीं बचा पाता जितना वह बचा लेता.

ज़ैक ट्रक के नीचे फिट कर करतार पंचर हुए टायर के नटों को खोलने लगा.

'देख ले ओ जग्गेया! यह सब करना पड़ता है डरैबर को. धूल में सड़ना पड़ता है. कालिख पुत जाती है हाथ मुंह पर. भूत-प्रेत बन जाते हैं, तब जाकर बनते हैं डरैबर! बोल मंजूर है यह सब तुझे?' करतार रॉड पर अपना पूरा भार डालकर नट खोलते हुए बोला.

थोड़ी देर चुप रहने के बाद जग्गी बोला, 'हां उस्ताद! मुझे मंजूर है... मैं बनूंगा ड्राइवर... मगर एक अच्छा ड्राइवर ... जो बीड़ी सिगरेट नहीं पीता हो... जो तंबाकू गुटखा नहीं खाता हो... वो वाला... पैसा कमाऊंगा... अपनी मां से लोगों के जूठे बर्तन नहीं धुलवाऊंगा. पैसा-पैसा जोड़कर चौधरी से अपनी पुश्तैनी ज़मीन भी वापस ले लूंगा.'

जग्गी की बातें सुनकर करतार सन्न रह गया. मासूम दिल के भाव शब्द बनकर फूट पड़े थे.

'शाबाश जग्गेया! तू तो शेरदिल निकला! मैं सिखाऊंगा तुझे डरैबरी. बस तू अपना जज्बा कायम रखना.' करतार ने जोशीले अंदाज़ में कहा तो जग्गी की हिम्मत बढ़ गयी.

जल्द ही दोनों टायर बदलकर बघेरी की तरफ़ बढ़ गये. करतार को जग्गी में अपना अतीत नज़र आने लगा था. उस पर जब ज़िम्मेदारियां पड़ी थीं तो उसने भी ड्राइविंग ही सीखी थी. ग़रीबी में पल रहे परिवार के लिए वरदान बन गया था वह. धीरे-धीरे सारा कर्ज़ उतार कर परिवार को अच्छी स्थिति में ले आया था करतार. मगर जग्गी की तरह शरीफ़ और भोंदू नहीं था वो. पर दोनों की स्थितियां लगभग एक जैसी थीं.

जग्गी को ट्रेन करने का ज़िम्मा अब करतार ने ले लिया था. बघेरी से जब गरमौड़ा की तरफ़ चलता तो वहां से स्वारघाट वाली चढ़ाई में जग्गी को स्टैरिंग थमाता और ख़ुद साथ बैठकर ड्राइविंग की सारी बारीकियां समझाता. कैसे गाड़ियों को पास देना है? ब्रेक कब और कितनी लगानी है? एक्सीलरेटर पर कितना दबाव देना है? ट्रैफ़िक में कैसे चलना है आदि...

सुबह-शाम ढाबे पर खाना खाने रुकते वहां करतार जग्गी को अपने अनुभवी ड्राइवर दोस्तों से मिलाता. धीरे-धीरे अब जग्गी का दायरा बढ़ने लगा था और साथ ही साथ बढ़ने लगा था उसका ड्राइविंग का ज्ञान.

उसने महसूस किया कि ज़्यादातर ड्राइवरों को नशे की लत ने जकड़ रखा है. गांजा, अफीम, बीड़ी, सिगरेट, शराब जो मिले सब. सबका एक ही मानना की गाड़ी चलानी है तो यह सब करना ही पड़ता है मगर जग्गी को इन बातों में जरा भी सच नहीं दिखता था. हालांकि कुछ ऐसे भी ड्राइवर थे जो बिना नशे के अच्छा काम कर रहे थे. अच्छा पैसा बचा रहे थे.

धीरे-धीरे समय बीतता गया और एक दिन आया कि जग्गी पूरा ड्राइवर बन चुका था. ख़ुद ही गाड़ी बघेरी सीमेंट प्लांट से वापस बरमाणा लाने में सक्षम.

करतार की मेहनत रंग लायी थी. बहुत ख़ुश था करतार. मगर एक दुःख अवश्य सताने लगा था उसे. जग्गी से दूर होने का दुःख.

जग्गी को अब स्वतंत्र रूप से किसी दूसरे मालिक की गाड़ी चलानी थी. उसने ड्राइविंग लाइसेंस के लिए आवेदन कर दिया था.

'उस्ताद! आपने मुझे ड्राइवर बनाया. आपका बहुत-बहुत धन्यवाद.' जग्गी बोला.

'ओए तनवाद कैसा जग्गेया? मेहनत तो ख़ुद तैने ही की है.' करतार ने जग्गी को बाहों में समेट लिया.

'पर अपने उस्ताद को भूल मत जाना! जब कभी आमने-सामने होंगे तो हॉर्न मार लेना या फिर हांक मारकर बुला लेना.'

'अरे नहीं उस्ताद! आपको कैसे भूल सकता हूं. अगर अनजाने में मुझसे कोई भूल चूक हो गयी हो तो माफ़ करना.' हाथ जोड़ते हुए जग्गी बोला.

'अरे माफ़ी कैसी जग्गेया! तू तो मेरे बेटे जैसा है!' बोलते-बोलते करतार खांसने लगा. खांसी ऐसी की करतार की आंखें लाल हो गयीं. जग्गी ने झट से ट्रक के अंदर रखी पानी की बोतल लाकर करतार की ओर बढ़ायी.

दो-चार घूंट पानी पीने के बाद करतार सामान्य हो पाया.

'लगता है फिर से डॉक्टर को दिखाणा पड़ना. प्राण ले लेगी नहीं तो किसी दिन तेरे उस्ताद की ये खसमखाणी,' करतार बोला.

'उस्ताद! अगर आपसे कुछ मांगना चाहता हूं तो आप मना तो नहीं करोगे ना! आपने मुझे अभी बेटा कहा है.' जग्गी ने कहा.

'आज तुझे किसी बात की मनाही नहीं... जान भी मांगेगा... तो वो भी हंस कर दूंगा... बोल क्या मांगता है.' करतार ने ऊंची आवाज़ में कहा.

'तो वादा करो उस्ताद कि आज के बाद बीड़ी, सिगरेट, शराब को आप हाथ नहीं लगाओगे.' जग्गी ने करतार की आंखों में आंखें डाल कर पूरे विश्वास के साथ हक़ जताते हुए कहा.

करतार पहली बार जग्गी के सामने ख़ुद को असहज महसूस करने लगा. जैसे जग्गी उसके बेटा जैसा नहीं उसका बाप हो. थोड़ी देर चुप्पी छायी रही. करतार ने जेब में हाथ डाला. माचिस और बीड़ी का बंडल निकालकर नीचे खाई में जोर लगा कर फेंक दिया.

'ले यार जग्गेया! आज के बाद सब बंद.' जग्गी की आंखों में ख़ुशी के आंसू थे.

वह भावुक हो चुके करतार से लिपट गया.

साथ–साथ रहने का आज उनका आख़री दिन था.

जग्गी को कुछ दिनों बाद दूसरा ट्रक मिल गया. यह ट्रक प्रदेश की दूसरी सीमेंट फ़ैक्टरी में माल ढुलाई के लिए लगा था. तमाम प्रक्रियाओं के बाद जग्गी का ड्राइविंग लाइसेंस बनकर तैयार था.

अब जग्गी के पास चलाने के लिए नये मालिक का नया–नया ट्रक था. नया-नया रूट था और दिल में था उत्साह और परिवार के लिए कुछ कर दिखाने की ललक. जग्गी ने करतार की हर हिदायत को ध्यान में रखते हुए पूरी लगन से ड्राइविंग की. उसे बहुत-सी नयी चीज़ें सीखने को मिलीं. अच्छी आमदनी पाकर ट्रक मालिक ने उसकी तनख़्वाह में इजाफ़ा कर दिया.

देखते ही देखते चार साल बीत गये. एक रात करतार ढाबे में खाना खाने रुका था. वहीं पर उसके ड्राइवर दोस्त भी थे. उनमें से एक जग्गी के गांव से भी था.

बातों ही बातों में पता चला कि जग्गी ने अच्छी रक़म कमाकर चौधरी के पास गिरवी रखी अपनी पुश्तैनी ज़मीन

वापस ले ली है. और उसकी मां अब गांव में जूठे बर्तन मांजने भी नहीं जाती. उसकी बहनें अच्छे स्कूल में पढ़ाई कर रही हैं.

'बहुत मेहनती लड़का है जग्गी करतारेयां और तूने उसे अच्छा ड्राइवर बनाकर बड़ा नेक काम किया.' करतार यह सुनकर बहुत ख़ुश हुआ मानो कोई उसके बेटे की प्रशंसा कर रहा हो.

जग्गी का साथ पाकर उसने भी बहुत कुछ पाया था. अब वह बीड़ी, सिगरेट से कोसों दूर था. उसे शराब से घृणा हो गयी थी.

नशे में जाने वाला पैसा अब आमदनी में जुड़ने लगा था. उसके स्वास्थ्य में भी काफ़ी सुधार हुआ था. वह एक नेक आदमी बन चुका था. यह सब जग्गी की संगत के बदौलत ही था.

मुंह में निवाला डालते-डालते करतार जग्गी के साथ बिताये वक़्त की यादों में खो सा-गया. उसे जग्गी को अपना चेला बनाने पर अनमोल गुरुदक्षिणा मिल चुकी थी.

लोअर घ्याल, पत्रालय-नमहोल,
तहसील-सदर,
जिला-बिलासपुर (हि. प्र.)-१७४०३२
मो. : ८६७९१४००१/८२१९९९५१८०
ई-मेल : shivkumarmanoj@gmail.com

सफ़ेद शॉल

माला वर्मा

अम्मा ने एक संग कई रंग की शॉलें बिस्तर पर रखीं और कह उठीं, ''जो मन भाये उठा लो.''

अरे वाह! सामने रंगों की बहार थी. गुलाबी, नीला, हरा, पीला, लाल, नारंगी और सबसे पीछे था दूध जैसी धुली मुस्कान वाला भक्कास सफ़ेद रंग. इतना पवित्र इतना कोमल इतना सौम्य, कि लगे हाथ लगाते कहीं मैला न हो जाये. मैं सारे रंग छोड़ उसे ही टकटकी लगाये देखती रही.

सच कहें तो मुझे नीला रंग बेहद पसंद है. वैसे यहां जितने शॉल थे, जितने रंग थे सब के सब बड़े लुभावने, बड़े प्यारे और बड़े जान लेवा. मन तो हो रहा था सब शॉल उठाकर अपने सूटकेस में धर लूं. अम्मा से कहा भी – ''क्या सारे शॉल उठा लूं? आराधना दीदी को आपत्ति तो न होगी? क्या हुआ दुबारा फिर ख़रीद कर भेज देंगी!''

अम्मा ने हंसते हुए कहा, ''ये शॉल तुम पांचों बहनों व अम्मा-पापा के नाम पर आयें हैं. तुमने ही सारे धर लिये तो बाक़ी लोगों का क्या होगा. हां, मेरा वाला तुम ले सकती हो, इतने सारे गर्म कपड़े यूं ही पड़े हैं. कोई कितने इस्तेमाल कर सकता है.''

शॉल, मेरी तीसरी दीदी ने दिल्ली से भेजे थे. अम्मां ने मंगवाये थे. कोई बंदा दिल्ली से आरा आ रहा था, उसी के हाथों ये रंग-बिरंगे शाल उपहार स्वरूप यहां पहुंच गये.

इसमें दो राय नहीं कि शॉल सभी सुंदर थे. और कायदे से मुझे अपने लिए सिर्फ एक ही शॉल उठानी थी. मैंने नीले रंग वाला पसंद कर लिया था पर निगाहें जब-तब सफ़ेद शॉल पर अटक जातीं जो इतने रंगों के बीच भी अपनी अलग आभा बिखेर रहा था. रंगहीन होते हुए भी इतनी आब, इतनी पवित्रता, इतना आकर्षण! बिना रंग के इतने रंगों पर भारी! मेरी नज़रें उस पर बर्फ़ सदृश्य जम गयी थीं. इतनी सख़्त कि पिघलने का नाम नहीं.

मैंने धीरे से नीले रंग वाला शॉल नीचे रखा और चट से सफ़ेद शॉल की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, ''अम्मा, मुझे तो ये सफ़ेद शॉल ही चाहिए. देखो तो रंगहीन होते हुए भी कितना प्यारा, कितना सुंदर लग रहा है. मेरे पास पहले से कई रंग के शॉल पड़े हैं पर सफ़ेद रंग का एक भी नहीं. मैं तो बस्स यही शॉल लूंगी जिसे मन आये उसे देती रहना. हर रंग की साड़ी के साथ सफ़ेद रंग मैच करेगा. बहुत दिनों से प्लान कर रही थी ख़रीदने के लिए, चलिए संयोग से आज मिल ही गया.''

सफ़ेद शॉल की तरफ़ हाथ बढ़ता कि अम्मा बोल उठीं, ''निम्मी ये सफ़ेद शॉल पापा ने अपने लिए पसंद किया है. तुम्हें तो पता ही है, पापा को सफ़ेद रंग कितना भाता है. बड़े शौक़ से अपने लिए दिल्ली से मंगवाया है.

तब तक वहां पापा आ गये. उन्होंने हमारी बातें सुन ली थीं. कहने लगे, ''हां भई! सफ़ेद रंगों से मुझे कुछ अतिरिक्त लगाव है. इस जाड़े में मुझे यही शॉल ओढ़ना है. वैसे भी बुढ़ापे में रंग-बिरंगा शॉल मुझ पर फ़बेगा नहीं. सो इस रंग को छोड़ अन्य कोई भी ले लो... मन हो तो दो शॉल ले सकती हो. इत्ते सारे हैं ज़रूरत पड़ने पर दिल्ली से और भी मंगाये जा सकता हैं.

''हां पापा, मुझे मालूम है, आपको सफ़ेद रंग बहुत पसंद है. मैं कोई दूसरा रंग ले लूंगी. आप इसे ज़रूर ओढ़ियेगा. आराधना दीदी ने आपका पसंदीदा रंग ही भेजा है. जैसे आप हमारे लिए स्पेशल हैं वैसे ये शॉल भी स्पेशल है. इसे कोई नहीं लेगा सिवाय आपके.''

फ़ैसला हो गया और बात आयी गयी हो गयी. वैसे भी शीत ऋतु आने में देर थी. रंग चाहे जो भी हो पहनने का काम तो कुछ महीने बाद ही होता. रात बिस्तर पर सोने आयी तो रह-रहकर सफ़ेद शॉल आंखों के सामने घूमता

रहा. शॉल एक और हक़दार दो हो गये थे, वो भी एक ही छत के नीचे, 'बाप-बेटी'. ख़ुद ही सोच कर हंसी आ गयी.

कुछ पुरानी बातें याद आने लगीं. पापा जब भी घर से बाहर किसी काम से अन्य शहर जाते, वहां से सबके लिए कुछ न कुछ छोटा-मोटा उपहार ज़रूर लाते, जिसमें प्रमुख होता अम्मां के लिए एक ख़ूबसूरत सफ़ेद रंग की साड़ी, वो भी सिल्क की. सफ़ेद ज़मीन पर, कभी लाल बॉर्डर तो कभी हरा, नारंगी, काला. रंग बॉर्डर का चाहे जो हो पर बीच का हिस्सा सफ़ेद रंग का होना ज़रूरी. पापा के इस 'श्वेत प्रेम' से हम सब अभिभूत थे और जब-तब अम्मा को वैजयंती माला कहकर छेड़ते भी थे.

आपको राजकपूर की फ़िल्म 'संगम' जरूर याद होगी तथा अवश्य देखा भी होगा. फ़िल्म की हीरोइन वैजयंतीमाला थी तथा उसने पूरी फ़िल्म में हर जगह सफ़ेद रंग की साड़ी ही पहनी थी. यह तो बाद में कहीं किसी फ़िल्मी पत्रिका में पढ़ने को मिला कि राजकपूर को सफ़ेद रंग से बहुत लगाव है और वे भरसक कोशिश करते हैं कि उनकी फ़िल्म की हीरोइनें सफ़ेद ड्रेस पहनें. इसका ज्वलंत उदाहरण संगम फ़िल्म में देखने को मिला. बस्स इसी प्रसंग को लेकर हम अम्मा की तुलना वैजयंतीमाला से करते और पापा को हर बार राजकपूर बना देते. और... वाक़ई हमारी अम्मा बहुत सुंदर थीं. वैजयंतीमाला को कौन पूछे वे मधुबाला, सायरा बानू जैसी टक्कर की थीं. ख़ैर...

एक बार पापा से मैंने पूछ भी लिया था — क्या आपने 'संगम' पिक्चर देख कर प्रेरणा ली है?

मेरी बात सुनकर पापा मुस्कराये और कह उठे, ''संगम तो बहुत बाद में बनी है, मैं तो उसके पहले से ही तुम्हारी अम्मा के लिए सफ़ेद साड़ियां ख़रीद रहा हूं. सफ़ेद रंग के आगे कोई दूसरा रंग भी टिक सकता है क्या! और कहीं ऐसा तो नहीं कि राजकपूर ने मेरा आइडिया चुराया हो! इस बात की तहक़ीकात करनी होगी...''

पापा की हाज़िरजवाबी सुन हम ख़ूब हंसे थे और हां में हां मिलाते हुए मैंने प्रतिउत्तर में कहा — बिल्कुल पापा, आप ज़ीनियस हैं. आपके टक्कर का कोई नहीं. ज़रूर किसी क़रीबी आदमी ने आपके मन का भेद वहां राजकपूर तक पहुंचाया होगा...

अतीत की बातें उमड़-घुमड़ कर मन में आ रही हैं. और हां, यहां यह भी कहती चलूं कि जब तक हम बहनों

जन्म: ३० जनवरी १९५६, आरा-भोजपुर (बिहार)
शिक्षा : बी. एस. सी (बॉटनी-ऑनर्स)

: प्रकाशन प्रसारण :

देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविता, लेख, लघुकथा, व्यंग्य, कहानियां एवं तथ्यपरक समसामयिक लेख आदि का अनवरत प्रकाशन. अब तक कई कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पुरस्कृत तथा कई रचनाएं संग्रहों में चयनित. आकाशवाणी कोलकाता से रचनाओं का प्रसारण.

: प्रकाशन :

कविता संग्रह : सूरज की चाह, अम्मा-पापा, आन्या.
लघुकथा संग्रह : परिवर्तन, थोड़ी सी हंसी, मैं हूं ना,
कहानी संग्रह : बसेसर की लाठी, नीड़, म्यूनिसिपैलटी का भैंसा.
यात्रा वृत्तांत : घुघली की माई, यूरोप, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, पिरामिडों के देश में, अमेरिका में कुछ दिन, चीन देश की यात्रा, ग्रीस एंड दुबई, टर्की, जॉर्डन, कनाडियन रॉकीज़ एंड अलास्का क्रूज़,
सचित्र आलेख : विश्व के २० आश्चर्य, स्कैन्डिनेविया (स्वीडेन, नॉर्वे, डेनमार्क- यात्रा वृत्तांत यंत्रस्थ), आइसलैंड-लैपलैंड
अंकिता हंस रही थी (कविता संग्रह- यंत्रस्थ)
मध्यांतर (कविता संग्रह-संपादक-माला वर्मा). माला वर्मा की चंद कहानियां (कहानी संग्रह).

: सम्मान :

अंबेडकर, फ़ेलोशिप अवार्ड १९९८, साहित्य शिरोमणि सम्मान, कवि कोकिल सम्मान, श्रीकृष्ण कला साहित्य अकादमी सम्मान २००१, गोविंदी बाई अवार्ड २००७, वरिष्ठ लघुकथाकार सम्मान २०१०, साहित्य सुरभि २०१०, कहानी सम्राट सम्मान-जी. वी. प्रकाशन, जालंधर २०१४, कहानी विधा में विशिष्ट सेवा हेतु शब्द प्रवाह अ. भा. साहित्य सम्मान. उज्जैन द्वारा अम्मा-पापा कविता संग्रह पर 'शब्दश्री' की मानद उपाधि, भारतीय साहित्य सृजन संस्थान एवं कथा सागर सम्मान 'मलेशिया सिंगापुर थाईलैंड' (यात्रा वृत्तांत) तथा 'अम्मा पापा' (कविता संग्रह) के लिए.

की शादियां नहीं हुईं, हमने भी अम्मा की उन सिल्क की सफ़ेद साड़ियों को इत्मीनान से पहना और मुदित हुए और यही नहीं जब-जब साड़ियां लपेटीं, हर बार मन ही मन अपने आपको किसी वैजयंतीमाला से कम न समझा. सच, वे भी क्या दिन थे. छोटी-छोटी बातों में भी कितनी बड़ी ख़ुशी हम ढूंढ़ लेते थे. और... आज की बात करूं तो सही मायने में अपना ही दिल-दिमाग़ इतना सरल नहीं रह गया है. न चाहते हुए भी छोटी-छोटी मामूली बातों में उलझ हम हमेशा चिंताग्रस्त, परेशान रहने को बाध्य हो गये हैं.

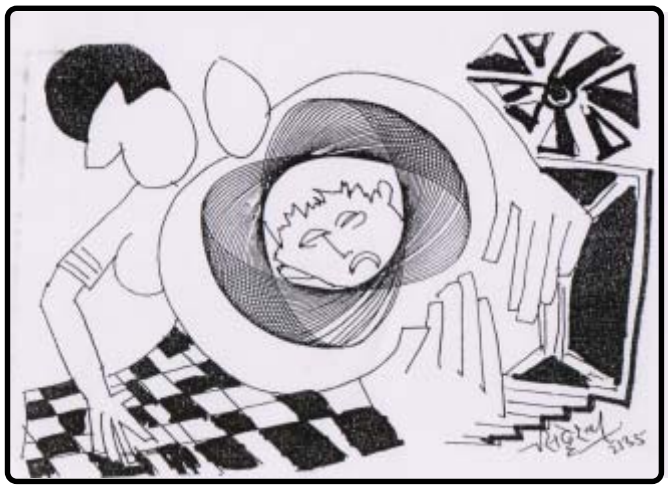

ख़ैर, बात सफ़ेद शॉल की हो रही थी. पापा को यूं सफ़ेद शॉल के प्रति उत्साहित देख बहुत अच्छा लगा. उम्र के इस पायदान पर भी उनकी इच्छाएं, उत्साह व शौक़ ज़िंदा बरकरार हैं, ये तो बहुत अच्छी बात है. वरना तो लोग इस उम्र तक आते-आते जीवन के प्रति उदास, निरुत्साहित हो जाते हैं. जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए. इस मामले में हमारे पापा वाक़ई ऊर्जा से भरपूर एक स्वस्थ सोच के मालिक थे. मैंने मन ही मन पापा को नमन किया और सो गयी.

मायके में दस दिन का प्रवास देखते ही देखते ख़त्म हो गया और वापस कोलकाता लौटने की बारी थी. एक दिन पहले पति आ गये थे लिवाने के लिए. मायके में बिताये ये दिन-रात स्वर्णिम थे, जिनके गुज़रने का पता न चला. फिर जल्दी ही वापसी होगी इसी आशा व उम्मीद के साथ सामान पैक होने लगा. आरा से शाम को लाल किला एक्सप्रेस छूटती है जो दूसरे दिन सुबह नयी हटी होते हुए सियालदाह लौट जाती है. यह ट्रेन सुविधाजनक थी.

सुबह से मन अतिशय भावुक हो उठा था. इच्छा तो हो रही थी काश हमेशा के लिए मायके में अपने माता-पिता के पास रह जाती. लेकिन मज़बूरी थी. आंखें जब तब भर आतीं. इधर मेरा मन खराब तो उधर अम्मा अपनी आंखें पोंछती. हम दोनों एक दूसरे से नज़रें बचा रही थीं. पापा निर्विकार थे लकिन मैं जानती हूं उन्हें भी इतनी ही पीड़ा थी. वे बार-बार एक ही कथन दुहरा रहे थे — वापस जल्दी आना, अपना लेखन बरकरार रखना. साहित्य सृजन में कोताही मत करना, कहीं कुछ छपे तो ज़िरॉक्स कॉपी भेजना, नयी हटी पहुंच कर ख़बर कर देना, रास्ते में चीज़ सामान से सावधान रहना, कुछ चाहिए तो कहो बाज़ार से मंगवा देता हूं. बाग़ान की साग सब्ज़ी थैले में रखवा दिया है, जाते साथ उसे खोल देना, आदि-आदि ढेरों नसीहतें, अनगिन भावभीनी सलाह. हां, पिता ऐसे ही होते हैं. वे हम औरतों की तरह रोते नहीं बल्कि उनकी आत्मा अपनी बेटियों के लिए तड़पती है. इसे दिखाया नहीं जा सकता, आपको महसूस करना होगा. और... मैं एक बेटी होने के नाते इसे गहराई से समझ रही थी. कितना दुखद होता है मायके की देहरी से विलग होना. जाने क्या सोचकर ऐसा विधि-विधान रचा गया है और जिसने ऐसी रीति बनायी क्या उसे दुख नहीं हुआ होगा!

रेलवे स्टेशन घर से इतना क़रीब कि पैदल यात्रा से काम चल जाये — किसी सवारी की जरूरत नहीं. चलते वक़्त अम्मा-पापा के चरण-स्पर्श किये, फिर मां के गले लग भरभरा उठी. वहां से पापा के पास पहुंची. दुबारा प्रणाम किया और गले से लिपट गयी. आंसुओं का सैलाब बह निकला.

पापा ने कांपते हुए हाथों से मुझे अलग किया और एक पैकेट मुझे पकड़ाते हुए कह उठे, "ये तो रह ही गया था. इसे ट्रेन में जब स्थिर हो जाओ तब देख लेना."

क़दम जैसे उठने को तैयार नहीं, पर आगे तो बढ़ना ही था. यही ज़िंदगी है और कटु सत्य भी. जब तक अम्मा पापा नज़रों के सामने बने रहें, मुड़-मुड़ कर देखती रही. पर कब तक! अगले मोड़ पर सब कुछ ओझल हो गया.

ट्रेन समय से थी. रिज़र्व कम्पार्टमेंट में लगेज आदि

लघुकथा

धूप

✍ राकेश सुमन

कार आकर सीधे ऑफ़िस के सामने रुकी थी. कार के शीशे पर चढ़े पर्दे बाहर की चिलचिलाती धूप को अंदर आने नहीं दे रहे थे. शोभा ने ऑफ़िस के अंदर से ही उसे देखा और तेज़ी से चलती हुई कार के पास पहुंच गयी. ''और सुन, बिट्टू को नीचे धूप में जाने मत देना, तबियत ख़राब हो जाती है उसकी.'' कार से निकलती हुई संभ्रांत महिला फ़ोन पर किसी को हिदायत दे रही थीं.

''आइए मैडम, आपका फ़्लैट तैयार है, बस सफ़ाई हो रही है. कभी भी चाबी ले सकती हैं.'' शोभा ने मुस्कुराते हुए कहा.

कुछ देर बाद दोनों एक नयी इमारत की सीढ़ियां चढ़ रहे थे. इमारत में छोटा-मोटा कार्य अभी भी चल रहा था. संभ्रांत महिला ने एक फ़्लैट इसी इमारत में ख़रीदा था. ''अरे शर्मा जी, सफ़ाई करवा दी मैडम के फ़्लैट की.'' सीढ़ियों पर सामने से आते एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से शोभा ने पूछा.''

''हां मैडम बस चल ही रही है, आइए ना दिखाता हूं.'' शर्मा जी दोनों को लेकर फ़्लैट में पहुंच गये थे. गंदे कपड़ों में, एक दुबली पतली औरत फ़र्श साफ़ कर रही थी. उसका बारह साल का लड़का खिड़की से बाहर देख रहा था. ''बस फ़र्श साफ़ हो रहा है. बाक़ी आप देख लें.'' शर्मा जी ने कहा.

''यह दीवारों पर मिट्टी के दाग़ कैसे हैं?'' संभ्रात महिला ने पूछा, ''ऐ हरिया, क्यूं री कितनी बार कहा है अपने बेटे को फ़्लैट में मत आने दे.'' शर्मा लगभग दहाड़ता हुआ बोला. ''ए चल भाग यहां से. नीचे जाकर खेल. फ़्लैट में देखा तो टांगे तोड़ दूंगा.'' शर्मा लड़के को दरवाज़े की ओर धकियाने लगा. हरिया ने सूनी आंखों से शोभा की ओर देखा और फिर सर झुकाकर फ़र्श साफ़ करने लगी. ''मैडम, ये लड़का बड़ा दुष्ट है, नीचे मिट्टी में खेलता है फिर दीवारें ख़राब करता है. मैं साफ़ करवा देता हूं.'' शर्मा संभ्रांत महिला से कह रहा था. शोभा कुछ बोलना चाह रही थी लेकिन शब्द जैसे होंठों पर रुक गये थे.

संभ्रात महिला अपने फ़्लैट का निरीक्षण करने लगी. शोभा ने ऊपर खिड़की से देखा, लड़का चिलचिलाती धूप में नीचे करीने से बनाए गये लान में घूम रहा था.

बोईसर, जिला पालघर–४०१५०१. मो. : ९०४९३९८००४.

जगह पर रख हम निश्चिंत हुए. ट्रेन खुली और धीरे-धीरे रफ़्तार पकड़ती गयी. इसके साथ अपना मायका भी पीछे छूटता गया. खिड़की से बाहर झांका. शहर के साथ-साथ गाछ-बिरछ भी भागते नज़र आये और ये रेल की पटरियां! कितनी अजीब बात है स्वयं तो कभी मिलती नहीं पर दूसरों को मिलाने का काम सदियों से करती आ रही हैं — इस उपकारिता का कोई मूल्य है क्या?

तभी निग़ाह गयी पॉलिथीन के उस पैकेट पर जिसे आते वक़्त पापा ने हड़बड़ी में थमाया था. पैकेट के भीतर एक और पैकेट था. देखूं तो सही पापा ने आख़िर इसके भीतर रखा क्या है! मन की उत्सुकता बढ़ती जा रही है. तेज़ी से दूसरा पैकेट खोला. और... सामने जो बहुमूल्य वस्तु नज़र आयी उसे देख मैं चकित रह गयी . इसके अंदर वही सफ़ेद शॉल था जिसे पापा ने बड़े शौक़ से अपने लिए पसंद किया था. मैं संज्ञाशून्य थी. ठहरे हुए आंसू फिर बेलगाम हो गये. ये आपने क्या किया?

□

इस घटना को एक दशक से ज़्यादा हो गये हैं. शॉल अभी भी मेरे पास जतन से पड़ा है लेकिन इसे दिलेरी से प्रदान करने वाले मेरे पापा नहीं रहे, और अम्मा भी हमें छोड़ चलीं. ठंड़ के दिनों में जब भी उस सफ़ेद शॉल को अपने सीने से लगाती हूं, तब-तब उसकी गर्माहट में अम्मां–पापा की स्नेहसिक्त छांव नजर आती है...

हाज़ीनगर, २४ परगना, उत्तर
प. बंगाल-७४३१३५
मो.: ९८७४११५८८३
ई-मेल : verma_mala2004@yahoo.com

दांव

महेंद्र सिंह

सुबह-सुबह तिकोने पार्क से ढोलकी, मंजीरे, खंजड़ी, घंटी और कीर्त्तनिये चिमटे के बजने की आवाज़ आने से मेरी नींद खुल गयी. प्रभातफेरी के पहले दिन सेवादारों ने 'सतनाम, वाहे गुरू' के उद्घोष के बाद गुरू गोविंद सिंह जी के दोहे का गान शुरू कर दिया था —

'जो लड़े दीन के हेत
सूरा सोइ,
सूरा सोइ,
पुर्जा-पुर्जा कट मरे
कबहुं न छाड़े खेत
सूरा सोइ,
सूरा सोइ'..

ढोलकी, मंजीरे, खंजड़ी, घंटी और चिमटे के संगीत से मिल कर 'सूरा सोइ' की सेवादारों के सामूहिक स्वरों में टेक मन में ओज एवं उत्साह भर दे रही थी. थोड़ी देर बाद, 'वाहे गुरू, वाहे गुरू' की टेक का आना शुरू हो गया. सिक्खों की प्रभातफेरी हमारी इमारत से आगे निकल गयी.

नौ-सवा नौ के क़रीब घर के दरवाज़े पर ताला लगाने के बाद मैं बख्शी साहब का हाथ पकड़ कर सीढ़ियां उतरने लगा. वह अपनी लाठी के सहारे मेरे साथ-साथ एक-एक सीढ़ी उतरते जाते थे. पांच मिनट में हम पुलिया पर पहुंच गये. संयोग से विक्रम तुरंत मिल गया. विक्रम चालक बाज़ार के रास्ते से आटो को ले जा रहा था. यह मुख्य सड़क से थोड़ा छोटा रास्ता था. पर इसमें भीड़ बहुत रहती थी. इस पर बख्शी साहब ने कहा —

'बेटा बाज़ार वाला रास्ता मत पकड़!'

आटोचालक थोड़ा जल्दी में था. वह नाराज़गी जताते हुए बोला — 'उस रास्ते के दस रुपये फालतू लगेंगे!'

'काके, ज़िंदा रहेगा तब न पैसे लेगा... '

बख्शी साहब की टिप्पणी इतनी सटीक थी कि आटोचालक से कुछ कहते न बना. आटोरिक्शा अस्पताल के दरवाज़े के सामने रुक गया. मैं उसका किराया देने लगा. पर बख्शी साहब ने मुझे रोक दिया. बख्शी साहब आटोचालक को उसकी मांग के अनुसार किराए से दस रुपये अधिक देते हुए बोले — 'रख ले बेटा.. तुझे भी अपने बीवी-बच्चों को पालना है.' आटोचालक बख्शी साहब को कृतज्ञ दृष्टि से देखते हुए आगे चला गया.

वैष्णवी के पापा अस्पताल के गलियारे में बिजूका की तरह खड़े हो रखे थे. उन्हें देख कर मुझे उनके घर में आये आई. सी. आई. सी. आई. के एज़ेंट का ध्यान आ गया. मैं दीपक जी से बोला – सुबह आपको कोई एज़ेंट पूछ रहा था. पर आपके घर पर ताला लगा हुआ था.' इस पर वह बोले — 'शायद, मां-बाबूजी छत पर बैठे होंगे.'

दीपक अग्रवाल निराश तो थे ही, अपने मन का गुबार निकालते हुए वह कहने लगे — 'कुछ समझ में नहीं आ रहा है. एक परेशानी दूर होती है, तो दूसरी आ खड़ी हो जाती है. हमने तो थोड़ी-बहुत दुनिया देख ली है. इसमें हमसे कोई न कोई ग़लती हुई ही होगी. पर इसकी सज़ा हमारी बेटी को क्यों मिल रही है? इसमें इस बेचारी नन्हीं-सी गुड़िया का क्या कुसूर है? इसने ऐसा कौन-सा पाप कर दिया कि भगवान इसको इतनी बड़ी सज़ा दे रहे हैं. जो भी दुख उन्हें देना चाहिए था, मुझे देना चाहिए था. मेरी बेटी को वह क्यों कर दुख दे रहे हैं? लोग-बाग पता नहीं ऐसा क्यों बोलते हैं कि बच्चों में भगवान बसते हैं!'

अग्रवाल जी के निराशाजनक विचार सुन कर बख्शी साहब एक बुज़ुर्ग की हैसियत से समझाते हुए उनसे कहने लगे — 'न राजे कुफ़्र नहीं बोलते!'

'मेरा जीवन तो राख हो रहा है!'

'बेटा, यह सब तो हुक्म से होता है! हुक्म से ही लोगों को सुख-दुख मिलता है. दुख मिलने पर घबराना नहीं चाहिए.'

'नौकरी का कोई ठिकाना है नहीं और ऊपर से यह मुसीबत और गले आन पड़ी है.'

'बेटा, तू चिंता न कर. अभी तो मैं हूं न... ये भी तो मेरी पोती जैसी ही है.'

'पोती' कहते-कहते बख्शी साहब की आंखें भर आयीं. उनकी भरी आंखें देख कर वैष्णवी के पापा भी भावुक हो गये. पर अचरज की बात है कि लाख चाहने के बावजूद उस समय मेरी आंखें छलकी नहीं. मेरी परदुख कातरता को यह क्या हो गया था? मेरे सामने ही बख्शी साहब तन, मन और धन से वैष्णवी का उपचार करने के लिए प्रतिश्रुत हो गये थे और मैं अपनी ओर से उन्हें कोई पेशकश करने की हिम्मत तक नहीं जुटा पा रहा था.

अस्पताल में हमारा पूरा दिन ख़र्च हो गया था. मैं आटोरिक्शा में बैठे हुए यही सब सोच रहा था कि बख्शी साहब ने मुझे तंद्रा से बाहर निकालते हुए कहा — 'बेटा, गुरुपरब आनेवाला है. अखंडपाठ का इंतज़ाम भी करना होगा.'

बख्शी साहब की बात सुन कर मेरा मन सिकुड़ गया.

हमारी कॉलोनी में बंगाली, बिहारी, राजस्थानी, पहाड़ी और स्थानीय लोग रहते थे. इनके बाद सिक्खों की संख्या अधिक थी. सिक्खों ने अपनी संस्कृति की पहचान अलग से बना कर रखने का प्रयास शुरू से किया था. वह अपने गुरुओं से जुड़े हुए उत्सवों को श्रद्धा एवं उल्लास से मनाया करते थे. गुरू अर्जुन देव जी के शहीदी दिवस पर सिक्ख शर्बत बांटा करते थे. कार्त्तिक का महीना आने वाला था. इस महीने में ही गुरुनानक देवजी का प्रकाशोत्सव था. गुरुपरब से तीन सप्ताह पहले उन्होंने प्रभातफेरी निकालना शुरू कर दिया था. गुरुपरब के दिन प्रभातफेरी का निकलना बंद हो जाता था. पवित्र दिवस से तीन दिन पहले अखंड पाठ शुरू हो जाया करता था. इसी दिन पंच प्यारे गुरुग्रंथ साहिब को फूलों से सजा कर जुलूस निकाला करते थे. साथ में धार्मिक संगीत बजता रहता था. कड़ा प्रसाद भी बांटा जाता था. सेवादार गुरुग्रंथ साहिब के जुलूस स्थल की सफ़ाई करते रहते थे. कुछ लोग अपने युद्ध कौशल का परिचय देने के लिए तलवारबाजी और लाठी भी चलाते रहते थे. लंगर का आयोजन भी दिल खोल कर किया जाता था.

२२ जून, नयी दिल्ली

हिंदी (एम. ए.), दिल्ली विश्वविद्यालय.

: पुस्तक :

शोर मचाए शोर (पर्यावरण मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत); डूबता सूरज (हिंदी अकादमी के सहयोग से प्रकाशित काव्य संकलन).

: पुरस्कार :

हिंदी अकादमी की आशुलेखन कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार.

: प्रतिनिधि कहानियां :

दीया बनाम तूफ़ान (नया ज्ञानोदय); कहानी 'क' और कहानी 'ख' (नया ज्ञानोदय); नाटक जारी है (हंस); मैं पावेल नहीं हूं (पाखी); एक्वेरियम (कथाक्रम); जाननिसारी (परिकथा); भोर का तारा (कथाक्रम), पॉलीथीन की थैली (दुनिया इन दिनों).

: संप्रति :

संयुक्त-निदेशक, राज्य सभा सचिवालय.

घर आने पर हमेशा की तरह आटोरिक्शा का भाड़ा बख्शी साहब ने दिया. साढ़े सात बज गये थे. विनी घर में लौट आयी थी. उसके पास दरवाज़े की दूसरी चाबी थी जिससे उसने दरवाज़ा खोल लिया था.

रात को आपात बैठक में लाला मुकेश, सुरेश जी, वैष्णवी के दादा, राजेंद्र जी, रावत जी, सपना और मिसेज़ मालती अग्रवाल के सामने प्राधिकरण के साथ चल रहे अपने ९० मीटर के कॉर्नर प्लॉट के पचड़े की आड़ में नवमी को जागरण कराने की अपनी विफलता को छिपाने का मैंने भरसक प्रयास किया. पर मेरी आपबीती सुन कर लाला मुकेश ने व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहा — 'आप घर

के लफड़े में उलझे रहे और उधर सरदारों ने प्रभातफेरी निकालनी भी शुरू कर दी.'

'यही तो हमारी कौम की समस्या है. हममें एका नहीं है.' वैष्णवी के दादा ने अफ़सोस प्रकट करते हुए कहा.

'आप यूं ही टसुए बहाते रहिए और वे गुरुद्वारे के लिए ज़मीन भी हासिल कर लेंगे.' मैंने तड़का लगाते हुए कहा.

'मिश्रा जी ठीक कह रहे हैं. हमारी आपस की अनबन का फ़ायदा वे लोग उठा रहे हैं. कल तो बख्शी साहब डेलीगेशन ले कर कमीश्नरी में जाने वाले हैं.' लाला मुकेश ने उन्हें जानकारी देते हुए कहा.

'अच्छा, इसलिए वे लोग टाटा सूमो, क्वेलिस और टेम्पो हायर करने की बात कर रहे थे...' मैंने बख्शी साहब के साथ हुई सुबह की बात को दोहराहते हुए कहा.

'जी हां...' मुकेश जी बोले.

'अब हम भी उनसे पीछे नहीं रहेंगे.'

रात्रि बैठक का नतीज़ा यह निकला कि मंदिर निर्माण हेतु युद्ध स्तर पर सभी लोगों ने कार्य भी शुरू कर दिया. वैष्णवी के दादा अपनी शाखा में चंदा-पुस्तिका ले जाने लगे. लाला मुकेश अपने धनाढ्य ग्राहकों से मंदिर के लिए चंदा लेने लगे. सपना ने स्थानीय केबल चैनल पर मंदिर बनाने का विज्ञापन डलवा दिया. केबल चैनल पर एक छोटी सी बाई-लाइन आने लगी जिसमें हमारी कॉलोनी में मंदिर बनाये जाने का संकल्प व्यक्त किया गया होता था और उसमें लिखा होता था — 'मंदिर निर्माण के लिए भक्तजन कृपया दिल खोल कर दान करें.' मिसेज़ अग्रवाल कॉलोनी की इमारतों में जा-जा कर चंदा जुटाने लगीं. रावत जी और राजेंद्र जी अपने-अपने दफ़्तरों में चंदे की पुस्तिकाएं ले जाने लगे. उन्होंने अपने नाते-रिश्तेदारों और यार-दोस्तों से मंदिर के लिए चंदा वसूलना शुरू कर दिया. इस धार्मिक कार्य के लिए मैंने अपने संपर्क सूत्रों का इस्तेमाल करना आरंभ कर दिया. हम सब चंदा एकत्र किये जाने की प्रगति से संतुष्ट थे. अपनी योजना के मुताबिक मैंने स्थानीय बैंक में ट्रस्ट का खाता खुलवा दिया. बैंक के वित्तीय लेन-देन पर मेरे, वैष्णवी के दादा जी और सुरेश जी के हस्ताक्षर होने लगे.

वैष्णवी के पापा की ग़ैरहाज़िरी में आई. सी. आई. सी. आई. बैंक का एज़ेंट दो-तीन बार और आया. हर बार उसे उनका घर बंद पड़ा हुआ मिलता था. हमें यह थोड़ा-बहुत अनुमान हो गया था कि मामला क्रेडिट कार्ड की पेमेंट या फिर होम लोन की अदायगी का हो सकता है. मगर इस बारे में हमारी वैष्णवी के पापा से कोई बातचीत नहीं हो पायी थी. इसलिए, हम भी विश्वसनीय रूप से कुछ नहीं कह सकते थे. मगर एज़ेंट के घर का चक्कर लगाने की बात जान कर वैष्णवी के दादा जी के गाल पर अचरज के थप्पड़ तड़ातड़ पड़ने लगे. उनका चेहरा लाल हो गया. फिर अचानक वैष्णवी के दादा जी को इलहाम हो गया कि उनके पास चंदे के पैसे पड़े हुए हैं और ज़िंदा रहना ज़्यादा ज़रूरी है! सुदिन आने पर डांड भर कर माफ़ी मांगी जा सकती है! इसके बाद वैष्णवी के परिवार के सदस्यों ने स्वयं को नज़रबंद कर लिया. अब उसके दादा यदाकदा ही शाखा में जाते थे. चंदे की उगाही का उनका काम सुस्त पड़ने लगा. वैष्णवी के पापा ने दाढ़ी रखना शुरू कर दिया. उनकी आंखों में खौफ़, असुरक्षा, लाचारगी और अपमान के मिले-जुले दृश्य बार-बार आने-जाने लगे. फिर धीरे-धीरे वैष्णवी के घर में से चीज़ें कम होने लगीं. किसी दिन उसके घर से फ्रिज़, टी. वी. और अलमारी जाते हुए दिखते, तो कभी पलंग, ड्रेसिंग टेबल आदि भागते हुए नज़र आते. अंत में एक दिन ऐसा भी आया जब वैष्णवी के घर के दरवाज़े के बाहर एक बड़ा सा ताला टंग गया. उनके औचक प्रस्थान के कुछ दिनों के बाद हमें पता चला कि दीपक अग्रवाल उर्फ़ वैष्णवी के पापा औने-पौने दामों में अपना मकान स्थानीय प्रॉपर्टी डीलर को बेच कर चले गये हैं... चंदे की पुस्तिका भी वैष्णवी के दादा अपने साथ ले कर चलते बने थे.

वैष्णवी के परिवार के रहस्यमय परिस्थिति में कॉलोनी से ग़ायब हो जाने पर मैंने वैष्णवी के दादा के खिलाफ़ पुलिस थाने में शिकायत दर्ज़ करवा दी. इस आशय की सूचना कॉलोनी के प्रमुख स्थलों पर भी चिपका दी गयी. फिर मैं मुकेश जी और राजेंद्र जी को अपने साथ लेकर सुरेश जी के घर गया और उन्हें ट्रस्ट के बैंकिंग लेन-देन की शक्तियां आपस में बांटने के लिए बड़ी मुश्किल से शीशे में उतार पाया. इस तरह मैं नाग की तरह फन फैला कर ट्रस्ट के खातों की भी रक्षा करने लगा.

चैत्र नवरात्र के ठीक एक सप्ताह पूर्व तिकोने पार्क में सुबह-सुबह घंटी बजने लगी. अभी थोड़ी देर पहले हमारी कॉलोनी के बच्चे तिकोने पार्क में खेल रहे थे. पार्क में बच्चों ने एक छोटा-सा चबूतरा बना दिया था. उन्होंने उस पर हनुमान जी की फ़ोटो रख दी थी. एक मोटा-ताज़ा लड़का

हनुमान बना हुआ था. वह जय श्री राम का उद्घोष करता जा रहा था. इसके कुछ समय बाद मुकेश लाला अपनी दुकान से निकल आये. वह हनुमान जी की फ़ोटो के सामने धूपबत्ती जला कर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगे. घंटी का स्वर सुन कर हम लोग भी अपने-अपने घरों से निकल आये. करम सिंह और करतार सिंह भी पार्क की ओर चले आये. पर लाला मुकेश पर इन सबका कोई असर नहीं पड़ा. वह अपनी पूजा-अर्चना में लगे रहे. पूजा करने के बाद वह हनुमान जी की फ़ोटो के सामने नतमस्तक हुए और पार्क में बैठ गये. उनके साथ-साथ मैं, सुरेश जी और मेरे दल के अन्य सदस्य भी तिकोने पार्क में बैठ गये.

मेरे प्लॉट में पिछली रात को ईंटें रख दी गयी थीं. कुछेक कारसेवक वहां से ईंटें लाने लगे. देखते ही देखते पार्क में ईंट, रोड़ी, बजरी और सीमेंट का ढेर लग गया. पूजा के लिए जो अस्थायी चबूतरा बनाया गया था, उसे यथावत बने रहने दिया गया. तिकोने पार्क में काफ़ी संख्या में लोग उपस्थित होने लगे. मैं लाला मुकेश, सुरेश जी, रावत जी और राजेंद्र जी के साथ भावी रणनीति पर विचार करने लगा. राजमिस्त्री ने मिट्टी ख़ुदवाने का काम शुरू करवा दिया. मज़दूर बड़ी मुस्तैदी से ज़मीन खोदने लगे और मिट्टी एक तरफ़ फेंकने लगे. उन्हें आज लगभग तीन फ़ुट की गहराई तक चौरस आकार में ज़मीन खोद डालनी थी. इसके बाद राजमिस्त्री को चबूतरा पक्का करने के काम में लगना था. ईंटों, सरियों और सीमेंट की गुणवत्ता पर लाला मुकेश की मुहर लग ही चुकी थी. निर्माण कार्य के लिए पानी की अस्थायी व्यवस्था मुकेश लाला और सुरेश जी ने कर दी थी. आगे से पानी का टैंकर नियमित रूप से आने की बात भी तय की जा चुकी थी. मैं मंदिर के लिए ट्रस्ट बनाने की ज़िम्मेवारी पहले ही उठा चुका था. बस, अब मैंने अपनी महत्वाकांक्षी योजना पर अमल करना आरंभ किया था.

घर से सीढ़ियों से उतरते समय पार्क की गतिविधियों के बारे में बख्शी साहब ने मुझसे जानकारी हासिल करने का प्रयत्न किया था. पर मैंने उनकी जिज्ञासा का शमन करने के बजाए उनकी उपेक्षा करना श्रेयस्कर समझा. बख्शी साहब को यह बात अखर गयी कि मैंने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया. पहला ख़्याल उनके मन में यह आया कि हो सकता है कि मैं अपनी पत्नी की सेहत को ले कर चिंतित हो रहा हूं. इसलिए, मैंने उनकी बात पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की. लेकिन, उन्होंने तो सिर्फ़ पार्क में चल रही गतिविधियों के बारे में मुझसे जानना चाहा था. उन्होंने कोई अनर्गल बात तो मुझसे नहीं पूछी थी. मैंने हमेशा उनके साथ पुत्रवत व्यवहार किया था. मैं गाढ़े समय में बख्शी साहब के काम आता रहा था. फिर मेरा व्यवहार इतना कटु भी न था कि वह उसे दिल पर ले लेते. किंतु, घर में खाली बैठे रह कर उधेड़बुन करते रहने से कहीं अच्छा था कि पार्क में पहुंच कर स्वयं वस्तुस्थिति का ज़ायजा लिया जाये. इसलिए, धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतर कर बख्शी साहब पार्क में पहुंच गये.

बख्शी साहब के निर्माण स्थल पर आ जाने से एक तनाव वहां पर पसर गया. बख्शी साहब को सामने आया देख कर मैं झेंपने लगा था. मैं उनसे आंख नहीं मिला पा रहा था. मुझे यह लग रहा था कि वह मुझसे यह पूछेंगे तो मैं क्या जवाब दूंगा कि बेटा! मंदिर निर्माण का कार्य शुरू करने की बात तुमने मुझसे क्यों कर छिपायी? तुमने मेरा विश्वास तोड़ डाला क्योंकि तुम यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि मैं कमीश्नरी के चक्कर इसलिए लगा रहा था ताकि गुरूद्वारे के लिए ज़मीन हासिल कर सकूं. तुमने ऐन वक़्त पर मुझे धोखा क्यों दे दिया? मेरे जीवन की यह साध लगता है कि अब कभी पूरी नहीं हो पायेगी. तुमने मुझे जीते जी मार डाला. तुममें मैं अपने मृत बेटे की छवि देखा करता था और तुमने ही मेरे साथ इतना बड़ा छल कर डाला.

लाला मुकेश वैसे ही बख्शी साहब से खार खाया करते थे. उन्हें बख्शी साहब की उपस्थिति से बहुत कोफ़्त हो रही थी. मेरी योजना यह थी कि जल्दी से जल्दी मंदिर का ढांचा तैयार कर दिया जाये. एक बार ढांचा बना दिये जाने पर उसका ध्वंस करना आसान न होगा. ढांचे के बिना मेरी भावी योजनाओं का कोई अर्थ न था. मेरी तरह लाला मुकेश भी जलते हुए चूल्हे में अपनी रोटियां सेक लेना चाहते थे. उनकी महत्वाकांक्षा मेरी जितनी बड़ी न थी, पर इसमें उन्हें अपने पौ बारह होते हुए नज़र आ रहे थे. सुरेश जी भी कढ़ाई में अपना सिर डुबो देना चाहते थे.

सुरेश जी और लाला मुकेश बख्शी साहब के पास आ कर खड़े हो गये थे. उनकी अनदेखी करते हुए बख्शी साहब ने मुझसे पूछा — 'पुत्तर, तू मुझसे नाराज़ हो गया सी.'

बख्शी साहब की संयमित आवाज़ से प्रभावित हो कर मज़दूर काम छोड़ कर खड़े हो गये और हमें देखने लग गये. मैंने उनकी बात का जवाब देते हुए कहा —

'मैं भला आपसे क्यों कर नाराज़ होने लगा?'

'पुत्तर फिर तूने मेरी बात का जवाब क्यों नहीं दिया?'

करम सिंह समेत कई सिक्खों ने बख्शी साहब को वहां पर खड़ा हुआ देख कर कयास लगाया कि वह किसी ग़लत बात का विरोध कर रहे हैं. वह उनका साथ देने के लिए पार्क में आ गये.

बख्शी साहब की आत्मीयता से मैं अपनी ही नज़रों में गिर गया था. मेरी हालत पतली होती जा रही थी. मुझे संभालने और अपना रंग दिखाने के इरादे से सुरेश जी बीच में ही बोल पड़े — 'हम यहां पर मंदिर बना रहे हैं. तुम्हें जो करना है, सो कर लो.'

सुरेश जी का तेवर इतना उग्र था कि उनकी ज़बान से निकली चिंगारियां उड़ते-उड़ते युवा सिक्ख करम सिंह के ज़हन को सुलगाने लग गयीं. जवानी का ख़ून गर्म होता है. वह तैश में आ कर विवेकशून्य आचरण करने लगता है. तब वह नतीज़ों की परवाह नहीं करता. उस पल विशेष में परिणामों की ख़बर रखना और लेना फ़िज़ूल हो जाता है. यह तो बुजदिलों का काम होता है. ऐसे में करम सिंह को चंद युवा सिक्खों को अपने साथ ले कर ज़ंगे-मैदान में कूद पड़ने में कितनी देर लगती — 'ओए तू रौब किसे दिखा रहा है? तू मुझसे बात कर. मैं अभी तेरी बोटी खींच कर निकाल लेता हूं.'

इस समय शांति, धैर्य व संयम से काम लिया जाना चाहिए था. बख्शी साहब ने अपने अनुभव की थाती का इस्तेमाल करते हुए करम सिंह को शांत करने के इरादे से कहा — 'करमा! तू गर्मी मत दिखा पुत्तर.'

पर करमा के सिर पर जुनून सवार हो चुका था. वह बख्शी साहब की बात का जवाब देते हुए बोला — 'आप देख नहीं रहे हैं कि यह सुरेश किस तरह से बोल रहा है. पब्लिक प्रॉपर्टी में मंदिर बनाने चले हैं. पूछो, इससे हमारे बच्चे फिर कहां पर खेलने जायेंगे?'

'बेटा तू शांत हो जा.' फिर बख्शी साहब गुरू नानक देव जी के एक दोहे को उद्धृत करते हुए बोले —

नानक नन्हे हो रहे, जैस नन्हीं दूब.
और घास जरि जात है, दूब ख़ूब की ख़ूब.

बख्शी साहब करमा को समझा रहे थे. लेकिन करतार बीच में हस्तक्षेप करते हुए बोल पड़ा — 'यह बकत दूब बने रहने का नहीं है. शूल हाथ में ले कर दुश्मन का सफ़ाया करने का है. ये लोग समझ रहे हैं कि संख्या में ज़्यादा होने के कारण ये हमें दबा देंगे. पर ये लोग यह नहीं जानते कि एक सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है.'

बातों ने विवेकहीनता की सीमा लांघ ली थी. करतार सिंह की ललकार सुनकर सुरेश जी के कारिंदें भला कैसे खामोश रह सकते थे. इस स्थिति का पूर्वानुमान लगा कर उन्होंने कुछ युवाओं को पहले ही से तैयार करके रखा हुआ था. उन्हें भी अपनी जवानी का जोश दिखाने के लिए एक मंच सहज रूप में मिल रहा था. वह कैसे इस मौक़े को हाथ से जाने देते? जवानी की एक छोटी-सी ग़लती ने पहले गाली-ग़लौज और फिर हाथापाई का रूप ले लिया. सुरेश जी के कारसेवकों और करम सिंह के हिमायतियों के बीच सिरफुटव्वल और जूतमपैजार होने लगा. देखते ही देखते तिकोने पार्क में ख़ून के छींटे बिखरने लगे. शांति के पैरोकार बख्शी साहब को भी लगे हाथ एक शोहदे ने धक्का दे डाला जिससे वह पार्क की ज़मीन पर गिर गये.

सुरेश जी को स्थिति की गंभीरता का अहसास था. वह किसी भी सूरत में उसे पुलिस की जद से बाहर रखना चाहते थे. हाथापाई और मारकुटाई के बाद की स्थिति कहीं अधिक विस्फोटक हो सकती थी. इसलिए, सुरेश जी का साधु दल सामने आ गया. इसका नेतृत्व मैं कर रहा था. सबसे पहले मैंने बख्शी साहब को उठाया. साधु दल के कुछ सदस्य सुरेश जी के कारसेवकों एवं करमसिंह के साथियों के झगड़े को छुड़ा कर बीच-बचाव करने लग गये. हाथापाई बंद होने पर वाक् युद्ध शुरू हो गया. दोनों पक्षों की महिलाओं के बीच आरोपों-प्रत्यारोपों का सिलसिला चलने लगा. एक पक्ष की महिला कहती कि यहां पर मंदिर बनेगा, तो फिर हम अपना कीर्त्तन दरबार कहां पर लगायेंगे? हमारे बच्चे पार्क में नहीं तो और कहां पर खेलेंगे? इस पर दूसरे पक्ष की महिला का जवाब आता कि ये लोग तो सुबह-सुबह प्रभातफेरी निकालने लगते हैं. हमारी नींद ख़राब होती है. अपने मामले में सब सही है, फिर हमें क्यों रोकते हो? हम तुमसे कोई मदद थोड़े मांग रहे हैं. मैंने बख्शी साहब की लाठी बनने का प्रयत्न किया. लेकिन उनकी आंखों में छायी निराशा व हताशा तथा मातमी चेहरे ने मुझे पीछे धकेल दिया. वह लंगड़ाते-लंगड़ाते अपने फ़्लैट की ओर चल दिये.

सुरेश जी पर लगाया गया मेरा दांव सही लग गया था. सुरेश जी ने पहली लड़ाई जीत ली थी. आज का सारा

काम उनकी योजना के मुताबिक हुआ था. हमारे कारसेवक तिकोने पार्क की मुस्तैदी से निगरानी करने लगे थे. तिकोने पार्क के आस-पास और इमारतों की छतों पर खड़ी भीड़ में मंदिर निर्माण को ले कर चल रही रस्साकस्सी पर बहस होती रही. कॉलोनी में रहनेवाले समस्त सिक्खों के मन में असंतोष, नाराज़गी, वैमनस्य और शत्रुता के बीज बो दिये गये थे. कोई भी यह महसूस कर सकता था कि ख़ुशनुमा माहौल में ज़हरीली हवाएं घुलने लगी हैं. बख्शी साहब के जीवन की आस्था खंड-खंड हो चुकी थी. तिकोना पार्क उनकी खंडित आस्थाओं और स्वप्नों का मक़बरा बन चुका था. कॉलोनी के हालात अनायास ही यह बयान करने लगे थे कि उनकी अनुपस्थिति में ऐसा कुछ घटित हो चुका है जिसकी भरपाई करना संभव नहीं है.

अपने फ़्लैट में लौटते वक़्त बख्शी साहब के क़दम नहीं उठ पा रहे थे. मन का बोझ उठा पाने में देह असमर्थता महसूस कर रही थी. विनी और मेरे प्रति उनका हमेशा से ख़ास लगाव रहा था. वह मुझमें अपने बेटे सुरजीत और विनी में अपनी बहू दीपाली की छवि देखा करते थे. वह मुझसे कहा करते थे कि अगर ८४ के दंगों में सुरजीत मरा न होता, तो वह आज तुम्हारे जितना होता. वह भी तुम्हारी तरह लंबा, छरहरा और शर्मीला युवक था. वह अपने बहू-बेटे को सुर (जीत) + दीप (दीपाली) = सुरदीप कह कर बुलाया करते थे. उनकी पत्नी सुरिंदर की खाली जगह तो कोई भर न सका था, लेकिन वैष्णवी ने आ कर उनकी पोती मुस्की की कमी पूरी कर दी थी. मुस्की हरदम मुस्कराती रहती थी. इसलिए, उन्होंने उसका नाम मुस्की रख दिया था. विनी, वैष्णवी और मुझमें वह अपने परिवार की तस्वीर देख कर संतुष्ट हो जाया करते थे. उसी तस्वीर के आज टुकड़े-टुकड़े हो गये थे. आख़िर पराया, पराया ही होता है. वह कभी अपने पेट के जाये की जगह नहीं ले सकता.

बख्शी साहब अपने घर का दरवाज़ा खोल कर अंदर आ गये थे. उन्हें इस बात का कोई होश न था कि दरवाज़ा खोलने के बाद बंद भी करना होता है. कमरे की बत्ती जला कर वह अलमारी में रखी हुई एलबम उठा कर ले आये. उनके नयनों से अश्रुधारा बह रही थी. उनकी आंखें एलबम में गड़ी हुई थीं. वह ३१ अक्तूबर, १९८४ को अपने भतीजे की शादी के सिलसिले में पंजाब गये हुए थे. दिल्ली में उनकी पत्नी, बहू, बेटा और पोती पंजाबी बाग में मेंहदी रात में गये हुए थे. उस दिन सुबह ९ बज कर २० मिनट पर देश की राजधानी दिल्ली में एक बहुत विशालकाय बरगद का पेड़ गिर गया था. उसके नीचे हज़ारों नव-पल्लवित एवं नव-पुष्पित पौधे आ कर कुचले गये थे. आज उसी दुर्घटना की याद आ जाने पर उनके शरीर के रोएं खड़े हो गये थे. उन्हें रह रह कर अपनी पत्नी, अपनी बहू, अपने बेटे और अपनी पोती का आर्तनाद सुनायी दे रहा था. फिर दिल्ली पर बुलडोज़र चलने लगे थे. आग में घी डालने का काम अफ़वाहों ने कर दिया था. हथियारों और मिठाई की सांठ-गांठ ने मातम फैला दिया था. दिल्ली में कर्फ़्यू लगा दिया गया था और दिल्ली में फौज़ियों के बूटों की चाप सुनायी देने लगी थी.

हालत की नज़ाकत को भांपते हुए मेंहदी रात के कार्यक्रम को स्थगित कर दिया गया. दंगे की उस भयावह रात को सुरदीप, सुरिंदर और मुस्की ख़तरा उठाते हुए मयूर विहार स्थित अपने घर के लिए निकल पड़े. रात में जब वह घर पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि उनके दरवाजे पर क्रॉस का चिह्न बना दिया गया है. सुरजीत को ख़तरा भांपते हुए देर न लगी. इस हालत में वह कुछ भी नहीं कर सकता था. उसने सभी को घर के अंदर बंद कर दिया. रात में दंगाई अपने नापाक़ इरादे को अंज़ाम देने के लिए आ पहुंचे. उनके हाथों में लोहे की छड़ें थीं. पेट्रोल था. मिट्टी का तेल था. दंगाइयों ने बख्शी साहब के घर का दरवाज़ा पीटना शुरू कर दिया. थोड़ी देर में उग्र भीड़ ने उनके घर का दरवाज़ा तोड़ डाला. दरवाज़े के टूटते ही दंगाइयों ने सुरजीत का स्वागत लोहे की छड़ों से किया. उसके सिर पर छड़ों की बौछार होने लगी. सुरिंदर अपने बेटे को बचाने के लिए दौड़ी, तो उन नरपिशाचों ने उसके सिर पर भी वार करना शुरू कर दिया. उन्होंने उसके सिर से चुन्नी भी उतार कर फेंक दी. दंगाइयों के मंसूबे को दीपाली ने भांप लिया था. उसने स्वयं को अपने बेड रूम में बंद कर लिया. जब दंगाई उसके शयनकक्ष का दरवाज़ा तोड़ पाने में सफल नहीं हो पाये, तो उन्होंने कमरे में पेट्रोल छिड़क दिया. इस तरह दीपाली और मुस्की को आग में ज़िंदा जला दिया गया... क्षण भर में बख्शी साहब का पूरा परिवार दंगे की भेंट चढ़ गया. सुरजीत और सुरिंदर के क्षत-विक्षत शव कमरे में पड़े रहे. दीपाली और मुस्की की तो बस राख से ही उन्हें संतोष

शेष ४६ पर देखें...

टापू

गोविंद सेन

कभी-कभी आदमी ख़ुद को टापू बना लेता है. समुद्र की अथाह जल राशि में नितांत अकेला निर्जन भूखंड. इन दिनों वह कुछ इन्हीं मनोभावों में गुज़र रहा है. अजनबी शहर की ऊंची-ऊंची इमारतों की भीड़, बेतहाशा दौड़ती मेट्रो, ट्रेनों और कारों के बीच अकेला. बाहर जितनी रफ़्तार थी, उसके भीतर उतनी ही जड़ता.

पिछले चौबीस दिनों से उसकी किसी से खुलकर बात ही नहीं हुई. यहां आकर जैसे उसकी ज़बान ही गुम हो गयी थी. जिसे देखिए वही मोबाइल में ही गुम दिखायी देता है. अपने-आप में बंद. जैसे सारा रस सिर्फ़ मोबाइल में ही हो, बाक़ी सारी दुनिया एकदम नीरस, उबाऊ और व्यर्थ. मोबाइल ने सबको अपनी मुट्ठी में कर रखा था.

उसकी आंखों के सामने सैकड़ों किलोमीटर दूर स्थित अपने क़स्बे में उसके घर के ठीक सामने पड़ने वाले एक मकान का दृश्य उभर आया. मकान लावारिस हालत में बिना देख-रेख के यूं ही बर्बाद हो रहा था. बरसों से वह अकेला गर्मी-बारिश झेल रहा था. किसी सामान की तरह पड़ा था. उसके आसपास के मकान इंसानी हलचल से भरे घर थे. किसी घर में झाड़ू लग रही है. कहीं दैनिक दिनचर्या की तरह कच-कच चल रही है. कहीं गगनभेदी स्वर में टेप बज रहा है. कहीं खाना पक रहा है. कहीं से कुकर की सीटी की तीखी आवाज़ आ रही है. गाय-बछड़े अपनी उदरपूर्ति के लिए भिखारियों की तरह द्वार-द्वार भटक रहे हैं. बच्चे स्कूल जा रहे हैं. कहीं किसी बच्चे का स्कूल जाने के नाम पर रोना-ठुमकना चल रहा है.

ठीक उस लावारिस मकान से सटे घर में बूढ़े दादा रेडियो लेकर प्लास्टिक की कुर्सी पर बैठे हैं. रेडियो पर गाना बज रहा है — 'चल अकेला... चल अकेला... चल अकेला... तेरा मेला पीछे छूटा राही चल अकेला...' सचमुच दादा का मेला पीछे छूट चुका है. उन्हें समय ने दरवाज़े से बाहर ठेल दिया है. उन्हें बहुत कम दिखाई देता है. रेडियो ही उनका इकलौता साथी बचा है. बहुत कम हलचल उनके पास बची रह गयी है. पर उस लावारिस मकान में कहीं कोई हलचल नहीं बची थी. सन्नाटा पसरा था. उसके बंद दरवाज़े के पल्ले जैसे बरसों से बंद मकान के होंठ हो.

उसके पतरे के दरवाज़े पर जंग लग गयी है. दरवाज़े के पांव की उंगलियां कोढ़ की तरह जंग से गल गयी हैं. उसके नीचे इतनी जगह बन गयी है कि कुत्ते-बिल्ली और नेवले जैसे छोटे-मोटे प्राणी मजे से भीतर दाख़िल हो सकते हैं. दरवाज़े के दोनों पल्लों पर यहां-वहां लगी कत्थई जंग ऐसे लगती है, मानो समय ने उस पर जगह-जगह थूक दिया हो. समय के थूक का रंग कत्थई ही तो होता है. मकान के भीतर समय असंख्य जालों और धूल की अनेक परतों में बदल गया है. दरवाज़े के पल्लों को बंद करने वाली डंडी और बंद ताले की स्टील की चमक धुंधली पड़कर कत्थई हो गयी है. समझ में नहीं आता, वह ताला किसकी सुरक्षा करता होगा. भीतर सांपों-बिच्छुओं ने अपना बसेरा बना लिया है. यह मनुष्य का घर सांपों-बिच्छुओं के साथ छिपकली-कीट-पतंगों का आवास बन गया है. वह उजाड़ मकान उसे अपना ही प्रतिरूप लगता है. तभी तो सैकड़ों किलोमीटर दूर भी वह उसे याद आ रहा है.

जब सुबह उठा था, बहुत बेचैन था. जैसे सुबह उसके लिए ताज़गी नहीं लायी थी. ऊब और तकलीफ़ें ज़रूर ले आयी थी. रात को ठीक से नींद नहीं आयी थी. भयावह सपने कई दिनों से उसकी नींद को तोड़ते रहे हैं. बिना सिर-पैर के सपने उसकी नींद में सुराख़ कर जाते हैं. सुबह वह उन सपनों को ठीक से याद भी नहीं कर पाता. ठोस कुछ पकड़ में ही नहीं आता. जैसे डरावनी परछाइयों को पकड़ने

की निरर्थक कोशिश कर रहा हो.

सुबह उसे उदास कर रही थी. सुबह के काम वह ऐसे कर रहा था, जैसे उन्हें बस निपटा रहा हो. यूं तो वह उठते ही सुबह ब्रश करता है. पर मुंह के भीतर कोई मसूड़ा फूल गया था. ब्रश करने से जलन होती और ख़ून आने लगता. इसलिए दंतकांति से उंगली के सहारे मंजन करने की औपचारिकता पूरी कर रहा था. कुछ दिनों से वह बुख़ार की हरारत भी महसूस कर रहा था. शायद बुख़ार ने ही उसके होठों पर अपने निशान छोड़े हों. पपड़ाए होठों पर फफोले उभर आये थे. इसके कारण वह चाय भी नहीं पी पा रहा है. चाय तो वैसे भी फ़ीकी ही पीना पड़ती है, उसे शुगर जो है. कभी-कभी क्या, उसे अक्सर लगता है उसकी ज़िंदगी ही फ़ीकी होकर रह गयी है. उसकी ज़िंदगी से नमक चला गया है और मिठास भी. वह दुनिया के किसी काम का न रहा और यह दुनिया भी उसके किसी काम की न रही.

बाथरूम में लगे आईने में उसने अपना चेहरा देखा. वह अपने चेहरे को बिलकुल पसंद नहीं करता. छप्पन का होते हुए भी पैंसठ-सत्तर का नज़र आता है. झुर्रियां बढ़ने लगी हैं. चेहरे पर जगह-जगह काले धब्बे उभर आये हैं. आंखों पर चश्मा कब का चढ़ चुका है. कनपटी और गालों पर काले धब्बे बढ़ते ही जा रहे हैं. भौहों के बाल सफ़ेद हो चुके हैं. जब-तब नथुनों से भी सफ़ेद बाल बाहर निकल कर बहुत बेहूदगी से झांकने लगते हैं. सिर के बाल क़रीब-क़रीब उड़ चुके हैं. कई लोग उससे पूछते हैं — 'रिटायर हो गये क्या?' कई लोग तो उसे सेवानिवृत ही मानते हैं. यह सब इस चेहरे पर चिपकी लाचारी, उड़े बाल, झुर्रियों और थकी चाल-ढाल की वजह से ही तो है. यदि उसका वश चलता तो अपना चेहरा बदल लेता. पर चेहरा कोई किराए का मकान तो नहीं जिसे बदला जा सके.

सुबह वह ठीक से चल ही नहीं पाता. पूरा शरीर जकड़ा हुआ होता है. कमर की दाहिनी ओर से नीचे पांव तक दर्द की एक लहर आती-जाती रहती है. जब से उसका स्लिप डिस्क का ऑपरेशन हुआ है, वह इस तकलीफ़ से जूझ रहा है. फिर दो साल बाद उसे फ्रोजन शोल्डर हो गया था. दाहिना हाथ उठा ही नहीं पाता था. दस दिनों की सतत फ़िजियोथैरेपी और बाद के दिनों की एक्सरसाइज़ के बाद वह बमुश्किल ठीक हो पाया था. पहले दाहिना हाथ जाम हुआ था. अब वैसी ही तकलीफ़ बायें हाथ में महसूस कर रहा है. वह अपने इस हाथ को दाहिने हाथ की तरह आसानी से घुमा नहीं पा रहा है. शर्ट की बांह पहनने में और अन्य कई कामों में बहुत असुविधा होती है. असहनीय टीस उठती है. जैसे पूरा शरीर ही बग़ावत पर उतर आया हो. लगता है उसका दर्द शरीर से होता हुआ उसके मन तक पहुंच गया हो. मन में भी दर्द की घुन लग गयी है. जैसे शत्रुओं ने एक साथ उस पर हमला कर दिया हो और वह संभल ही नहीं पा रहा है. दर्द आदमी को बहुत अकेला कर देता है. अपना दर्द किसी के साथ साझा भी करना मुश्किल होता है. कुछ लोग तो दूसरे के दर्द को भी तमाशबीन की तरह एन्जॉय करते हैं.

इस शहर में आने के बाद रोज़ वह रूटीन की तरह

१५ अगस्त १९५९, राजपुरा अमझेरा, धार (म. प्र.).
शिक्षा : एम. ए. (हिंदी, अंग्रेज़ी), बी. टी.

: प्रकाशन :

चुप्पियां चुभती हैं (ग़ज़ल संग्रह) १९८८, अकड़ूभुट्टा (निमाड़ी हाइकु संग्रह) २०००, नकटी नाक (निमाड़ी हाइकु संग्रह) २०१०, नवसाक्षरों के लिए कुछ पुस्तिकाएं, बिना पते का प्रशंसा पत्र (व्यंग्य संग्रह) २०१२, खोलो मन के द्वार (दोहा संग्रह) २०१४, सफ़ेद कीड़े (कहानी संग्रह) २०१७.

: पुरस्कार :

'स्वदेश' कहानी प्रतियोगिता-१९९२ में कहानी 'बरकत' को प्रथम पुरस्कार सम्मान- पं. देवीदत्त शुक्ल स्मृति सम्मान-२००३ , आंचलिक साहित्यकार सम्मान-२००५-०६, झलक निगम साहित्य सम्मान-२०१२, हमजमीं सम्मान-२०१२, साक्षरता मित्र सम्मान-२०१३, शब्द प्रवाह सम्मान-२०१३, गणगौर सम्मान-२०१४

: संप्रतिः

अध्यापन

एक किलोमीटर दूर पड़ने वाले गार्डन में घूमने जाने लगा था. गार्डन लंबा-चौड़ा है. तरह-तरह के हरे पेड़-पौधे खड़े हुए हैं. हरी घास के कई टुकड़े बग़ीचे में बिछे हैं. बैठने के लिए कुर्सियां हैं. घूमने के लिए उसमें गोलाकार वाकिंग ट्रैक बना है. उसे उस सड़क का एक चक्कर लगाने में तेरह मिनट लगते हैं. कुछ लोग एक चक्कर दस मिनट में ही लगा लेते हैं. चूंकि वह धीमा चलता है. इसलिए तेरह मिनट लगते हैं.

गार्डन में तेज़ क़दमों से चुपचाप जाते हुए लोग उसे ऐसे लगते हैं मानो किसी शव-यात्रा में शामिल होने जा रहे हों. शव कहीं आगे ले जाया जा रहा है और वे उसके पीछे-पीछे चुपचाप तेज़ चाल से चले जा रहे हैं. कोई-कोई दौड़ते हुए भी जा रहा है.

गार्डन में एक आदमी ने बरबस उसका ध्यान खींचा. वह ठेठ देशज आदमी लग रहा था. प्रसन्नता जैसे उसके लिए एक ज़िद की तरह थी. वह जैसे हर दीवार को तोड़ देना चाहता था. हर दिशा के दरवाज़े को वह खटाखट बेझिझक खोलता जा रहा था.

'राम-राम जी, राम-राम' उसने जब उसे कहा तो वह चौंक गया. उसकी जड़ता को थोड़ी-सी ठेस लगी. उसकी 'राम-राम जी, राम-राम' में एक लयबद्धता थी. यह कहते हुए हथेलियों को ठोकने का उसका अंदाज किसी की पीठ ठोकने जैसा था. जैसे वह किसी की पीठ ठोककर उसे उत्साहित कर रहा हो. वह चुप्पी को चुनौती दे रहा था. सन्नाटे को वह आवाज़ के चाकू से चीरता चला जा रहा था. बग़ीचे की पूरी हरियाली वह अपने भीतर समा लेना चाहता था और अपनी सारी प्रसन्नता पूरे बग़ीचे को सौंप देना चाहता था. 'राम-राम जी, राम-राम' की लय में वह सबको समेट लेना चाहता था.

वह सबसे 'राम-राम' करते हुए लगातार आगे बढ़ता जा रहा था. उसमें ख़ुद को महत्त्वपूर्ण दिखाने की चेष्टा या अपने किसी पंथ-प्रचार की कोई मंशा नज़र नहीं आ रही थी. वह सामान्य आदमी दिख रहा था. न उसकी चोटी बंधी थी और न भाल पर चंदन का टीका वग़ैरह लगा था. केवल सबसे जुड़ने का एक विनम्र-सा प्रयास ही नज़र आ रहा था.

उसका खुलापन किसी ग्रामीण-जन जैसा था. वह थोड़ा-सा ग्रामीण और थोड़ा-सा शहरी लग रहा था. उसमें गांव को शहर की पीठ पर चिपका देने की ज़िद-सी थी. वह अधेड़ उम्र का ज़िंदादिल इंसान लग रहा था. उसके बाल छोटे और कड़क थे. कुछ झुके, कुछ अनझुके. मज़बूत इरादों-से मज़बूत जबड़ों के साथ खिला हुआ मुखर चेहरा.

वह अपनी गुहार के साथ आगे निकल चुका था. दूर होती उसकी आवाज़ आ रही थी — 'बिटिया राम. बिटिया राम-राम.' पता नहीं उस बिटिया ने उसकी राम का जवाब दिया या नहीं. पर वह उससे उसकी 'राम-राम' अनजाने में ले जा चुका था. उसे वह आदमी बहुत अनोखा लग रहा था.

आदमी ने टीशर्ट पहन रखी थी. उसकी टीशर्ट आखों में रह गयी थी. उस पर जो लिखा था, वह तो उसे बहुत अचरज में डाल रहा था. टीशर्ट की छाती पर अंग्रेज़ी में लिखा था — 'गैप.' गैप का मतलब दूरी. पर वह तो दूरी के खिलाफ़ तनकर खड़ा हुआ एक बंदा था. सोचकर वह मुस्काया. शायद यह इस शहर में उसकी पहली मुस्कान थी.

घूमकर वह वापस लिफ़्ट से नौवीं मंजिल पर अपने फ़्लैट में पहुंचा. उसे याद आया एक दिन गार्डन में वह अपने में गुम धीमी चाल से चला जा रहा था. सहसा बगल से एक दौड़ती हुई अजनबी लड़की उसे 'राम-राम' बब्बा कहते हुए आगे बढ़ गयी थी. सुनकर और उसका जवाब देते हुए उसे अच्छा लगा था. मेट्रो में एक लड़के ने उसे बुज़ुर्ग जान अपनी सीट छोड़कर उसे बिठा दिया था. फ़्लैट के गेट पर तैनात गार्ड उसे रोज गुड मॉर्निंग करता है. उसके फेफड़ों में एकदम ताज़ा हवा भरने लगी, जिसमें भरपूर ऑक्सीजन थी.

धीरे-धीरे उसकी उदासी का गुब्बारा पिचकने लगा था.

राधारमण कॉलोनी, मनावर,
जिला-धार (म. प्र.)४५४४४६,
मो. : ०९८९३०१०४३९
ईमेल-govindsen2011@gmail.com

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

लघुकथा

मानसिकता

नरेंद्रकौर छाबड़ा

बंदरों का एक झुंड जंगल से निकल उछल-कूद मचाता सड़क के क़रीब आ गया. इतने में ही दूर से तेज रफ़्तार से आती कार देख सभी कूद कर सड़क पार कर गये लेकिन एक बंदर पीछे रह गया. दुर्भाग्यवश वह कार की चपेट में आ गया. कार तो निकल गयी पर बंदर अचेत हो गया था. सभी साथी बंदर उसके पास पहुंचे. चारों ओर से उसे घेरकर बैठ गये, उसके ठीक होने का इंतज़ार करने लगे. तभी एक बंदर ने समीप के पेड़ से पत्तों से भरी टहनी तोड़ी और उसे पंखे की तरह हवा करने लगा.

कुछ ही देर में वह बंदर होश में आ गया. सभी ख़ुशी से नाचते-कूदते जंगल की ओर चल पड़े. रास्ते में एक बंदर ने कहा — 'इंसान हमें अपना पूर्वज मानता है. अब बताओ आज जो घटना हमारे साथ घटी वही किसी इंसान के साथ घटी होती तो क्या होता?'

एक बंदर जो सबसे बुज़ुर्ग व समझदार था बोला — 'घायल इंसान के आसपास खड़े लोग अपने मोबाइल निकालकर वीडियो बनाते, सेल्फ़ी लेते और आगे बढ़ जाते...'

ए-२०१, सिग्नेचर अपार्टमेंट्स, तंदूर होटल के पीछे,
बंसीलाल नगर, औरंगाबाद-४३१००५ (महाराष्ट्र), मो. : ९३२५२६१०७९
ई-मेल : narender.chhabda@gmail.com

दांव.....

(पृष्ठ ४२ का शेष भाग...)

करना पड़ा. बख्शी साहब के नेत्रों से आंसुओं की धार यथावत बहती चली जा रही थी. आज़ादी के ३७ वर्षों बाद देश की राजधानी में हुए दंगों में उनका परिवार होम हो गया था और वह तिल-तिल कर मरने के लिए छोड़ दिये गये थे. उन्होंने किसी तरह से इस सदमे से अपने को उबार लिया था और वह धर्म-कर्म के कामों में व्यस्त हो गये थे. पर आज उनका वह स्वप्न भी चकनाचूर हो गया था. बख्शी साहब बहुत ज़ज्ब कर रहे थे. दर्द हद से गुज़रा जा रहा था और बीमारे दिल पर कोई दवा असर नहीं कर पा रही थी.. और अंत में एक क्षण ऐसा भी आया जब तीव्रता इतनी बढ़ गयी कि हुचक के रूप में उनकी जिह्वा से निकल पड़ी, 'ऊई!'.. .. और फिर उनकी गर्दन दांयी ओर लुढ़क गयी.

मालती भाभी और विनी ने अस्पताल से लौटते हुए अस्त-व्यस्त हालत में बख्शी साहब को जाते हुए देख लिया था. विनी ने तिरछी नज़रों से यह भी देख लिया था कि मैं पार्क में खड़ा हुआ हूं. मालती भाभी ने एक बार बख्शी साहब से पूछा भी — 'पापा जी... तबीयत ठीक नहीं है,' मगर उन्होंने भाभी जी की बात का कोई जवाब नहीं दिया. वे दोनों जब बख्शी साहब के कमरे में घुसे, तो उन्होंने देखा कि बख्शी साहब सोफ़े पर एलबम ले कर बैठे हुए हैं तथा उनकी गर्दन दांयी ओर को झुकी हुई है. अंत समय में बख्शी साहब को पानी तक नसीब नहीं हो पाया था. बख्शी साहब की मृत देह को देख कर मालती भाभी की ज़बान से बरबस निकल पड़ा — 'पापा जी...' तत्पश्चात, मालती भाभी ने उनकी गोद में रखी हुई एलबम हटा कर टेबल पर रख दी. उन्होंने फ़र्श की सफ़ाई कर दी. फिर, मालती भाभी और विनी, दोनों ने मिल कर उन्हें फ़र्श पर लिटा दिया. विनी मन ही मन सोच रही थी कि आज उसके सिर पर से पिता का साया उठ गया.

बख्शी साहब की मृत्यु की ख़बर सुन कर पड़ोसी उनके फ़्लैट में एकत्र होने लगे थे. तिकोने पार्क में भी यह ख़बर पहुंच गयी थी. मगर मैं अभी भी कार सेवकों के साथ तिकोने पार्क में खड़ा हुआ था.

फ़्लैट क्रमांक नं. ए-८,
राज्य सभा आवास, आई.एन.ए. कॉलोनी,
नयी दिल्ली-११००२३
मो. : ०९९६८३००२३९
ई-मेल : 226amahenku1969@gmail.com

रुतबा

डॉ. हंसा दीप

आज पीए डे की छुट्टी है. शिक्षकों का 'प्रोफेशनल एक्टिविटी डे' बेचारे मम्मी-पापा का 'घरेलू एक्टिविटी डे' में बदल जाता है. इस अनपेक्षित छुट्टी के सारे परिणाम मम्मी को या पापा को, किसी एक को घर पर रुककर भुगतने पड़ते हैं. वैसे अभी तक तो दादा-दादी थे लेकिन अब वे भी चले गये हैं. नाना-नानी भी शहर के बाहर गये हुए हैं किसी मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा पूजा में सम्मिलित होने के लिए. अगर वे होते तो किसी को कोई चिंता ही नहीं होती. बच्चे भी नाना-नानी के लाड़-प्यार का आनंद उठाते और मम्मी-पापा भी निश्चिंत होकर अपने सारे बचे हुए काम निपटा कर ही शाम को घर लौटते. बच्चों के पापा की ज़रूरी मीटिंग थी, उनका रुकने का तो सवाल ही नहीं था. सो वह विकल्प भी नहीं बचा था.

सारे स्रोत जब बंद हो जायें तो एक ही शख़्स पर दारोमदार होता है और वह शख़्स है बच्चों की मम्मी. मम्मी को ही अपने ऑफ़िस में फ़ोन करके सूचित करना पड़ा कि आज वे ऑफ़िस नहीं जायेंगी अपितु घर से काम करेंगी.

रोज़ तो साढ़े सात बजे से पौने आठ बजे के बीच दोनों बच्चों की पुकार लगती थी उठाने के लिए लेकिन दोनों के कानों में जूं तक नहीं रेंगती. आख़िरी अलार्म के रूप में मम्मी की उल्टी गिनती बजती. दस, नौ, आठ, सात, छः तक पहुंचते ही दोनों बिस्तर छोड़ देते. आर्मी की बटालियन की तरह खट-खट करते अपने कैप्टन को हाज़िरी लगाते, मम्मी के दो, एक बोलने के पहले ही आंखें मलते-मलते दोनों, नींद में झूमते हुए किचन में पहुंच जाते.

आज दस मिनट से बच्चे बिस्तर में अलट-पलट रहे थे. कोई उठाने ही नहीं आया. घर में रोज़ जैसा हल्ला भी नहीं था. इशु को करवटें बदलते हुए याद आ गया कि आज पीए डे है, छुट्टी है.

'मनु आज छुट्टी है' इशु ने अपनी चादर फेंकी और जल्दी से पहुंची मनु को उठाने. मनु भी तो उठा हुआ ही था. उसकी खुली आंखें चमक गयीं.

अब क्या था. आज कोई दबाव नहीं था उन पर. न उठने का, न ब्रश करने का, न बाथरूम जाने का. पूरी तरह से छुट्टी के मूड में आ गये दोनों. ख़ूब खेलना था, खूब मस्ती करनी थी. उठते ही अपने-अपने वे सारे खिलौने फैला कर बैठ गये जो स्कूल की वजह से कोने में चुपचाप पड़े रहते थे. कोई खिलौना बॉक्स के अंदर था तो कोई आधा बाहर, आधा अंदर था. कोई बिना बॉक्स के ज़मीन की धूल खा रहा था तो कोई एक के ऊपर एक रखा अपने दूसरे साथी के सिर का ताज बना हुआ था.

छः साल की इशु को जो पहली नज़र में दिखा वह उसका पसंदीदा खिलौना था. एक तरफ़ मैगनेट लगे प्लास्टिक के अलग-अलग आकार, जो एक दूसरे से जुड़ कर कई नये आकार बना देते थे. उनमें से कुछ आकार टूट गये थे जिन्हें थोड़ी मेहनत करके जोड़ा जा सकता था. पापा ने एक दिन इशु से वादा किया था कि वे इन्हें चिपका कर ठीक कर देंगे.

जैसे ही इशु को पापा का वादा याद आया वह अपनी पूरी ताकत से चिल्लायी — 'पापा आपने मेरा मैगनेट वाला खिलौना अभी तक ठीक नहीं किया. मैं कब से कह रही हूं आपसे.'

बच्चों को आज स्कूल नहीं छोड़ना था तो पापा थोड़ी देर से उठे थे. देर में देर तो हो ही जाती है इसलिए अब भागमभाग करके तैयार हो रहे थे. नहाना था, कमीज़ पर इस्त्री भी करनी थी. इशु की बात सुनने का समय ही नहीं था.

'पापा, आप मेरी बात सुन ही नहीं रहे. मुझे यह खिलौना ठीक करना है वरना मुझे नया चाहिए.'

पापा अब टुन-टुन कर बजते फ़ोन को उठाकर, आये

हुए संदेशों की गंभीरता का आकलन कर रहे थे. यह भी देख रहे थे कि उनकी मीटिंग का समय हो रहा है जिसके लिए उन्हें जल्दी पहुंचना था.

'पापा, आप सुन नहीं रहे हैं मेरा खिलौना...मेरा खिलौना आप कब ठीक करेंगे. आप ठीक नहीं करते तो मुझे नया चाहिए.'

इस बार इशु पूरी ताकत से चिल्लायी थी. ऑफ़िस की चिंता में उलझते, तैयार होते पापा बिफर पड़े – 'मेरे पास इतना समय नहीं है कि तुम्हारे छोटे-छोटे काम करता रहूं. तुमने तोड़ा है तो तुम्हीं ठीक करो. नया तभी आयेगा जब तुम इसके पैसे मुझे दोगी, बहुत महंगा है मैंने बहुत पैसे ख़र्च किये हैं.'

पापा का ग़ुस्सा था, चिड़चिड़ाहट थी या झुंझलाहट थी, जो भी था, इशु को कुछ समझ में आया, कुछ समझ में नहीं आया. जो समझ में आया वह यह था कि इस समय पापा से कुछ कहना नहीं है, कुछ पूछना नहीं है.

खिसिया कर वह अपने से दो साल छोटे भाई मनु के साथ खेलने का उपक्रम करने लगी. इस बीच मम्मी आकर दोनों को दूध का गिलास थमा कर चली गयी थीं. दूध ख़त्म करके दोनों फिर से अपनी आज़ादी का लुत्फ़ उठाने की कोशिशों में जुट गये.

मनन से बना मनु भी अपने मन का राजा था. छुट्टी का मतलब समझता था. स्कूल के चक्कर में अपने कई रुके हुए खेलने के मौक़ों को हाथ में आया देख कभी इसे उठाता, कभी उसे उठाता. एक अटकी हुई पज़ल आगे ही नहीं बढ़ रही थी, उसी की सोच में डूबा था. बीच में इशु के आने से उसकी प्लानिंग में रुकावट आ गयी पर मदद मिलने की आशा भी थी. वह इशु से पूछने लगा — 'यह टुकड़ा यहां फिट होगा, नहीं नहीं वहां...' बिना रुके उससे पूछता रहा, कहता रहा — 'यह, वह...'

मनु की आवाज़ इशु से कहीं ज़्यादा तीखी थी. जितना छोटा बच्चा उतनी तीखी आवाज़. पैदा होते ही जब बच्चा रोता है तो सब लोग उसकी आवाज़ सुनने की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं. ख़ुशी के मारे कभी भी यह ख़्याल किसी के मन में नहीं आता कि पल भर पहले दुनिया में आये बच्चे में इतनी ताकत से रोने की ऊर्जा कहां से आयी. उस समय तो उसका रोना कराहती मां और बाहर खड़े रिश्तेदारों के कानों में अमृत उंडेल देता है.

टोरंटो, कैनेडा

हिंदी साहित्य में पीएच.डी.

यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में २००५ से लेक्चरार के पद पर कार्यरत. पूर्व में यॉर्क विश्वविद्यालय, टोरंटो में हिंदी कोर्स डायरेक्टर एवं भारतीय विश्वविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक.

उपन्यास 'बंद मुट्ठी' व कहानी संग्रह 'चश्मे अपने-अपने' तथा कई कहानियां प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिंदी छात्रों के लिए अंग्रेज़ी-हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों के कई संस्करण प्रकाशित.

पर मनु का चिल्लाना इशु के कानों में तीर की तरह चुभ रहा था. मनु की चिल्लपों को कुछ देर तो इशु सुनती रही पर कब तक सुनती, आख़िर बड़ी बहन थी. सुबह से उसकी बात सुनी नहीं गयी थी, वह कैसे मनु की बात सुनती. सुबह जो दिमाग़ में रिकॉर्ड हुआ था बजने लगा – 'मेरे पास इतना समय नहीं है, देखते नहीं कितना काम है मुझे. यह खिलौना ठीक करके रखना है, नहीं तो पापा को पैसे देने पड़ेंगे. तुम मुझे परेशान करोगे तो यह खिलौना ठीक नहीं हो पायेगा और अगर यह ठीक नहीं हुआ तो मैं तुमसे इसके पैसे लूंगी.'

'बॉस' बनने के बीज अंकुरित हो रहे थे इशु में. सुबह पापा से मिले डोज़ का आकार प्रकार थोड़ा-सा बदला था पर सारांश लगभग वही था.

'मेरे पास पैसे नहीं हैं, मेरे पास बस खिलौने हैं.' मनु ने अपनी जायदाद का ब्यौरा देने की कोशिश की.

इशु के पास वाजिब कारण थे मनु की मदद नहीं करने के. साथ ही गुंजाइश भी थी एक समझौता वार्ता की.

इशु ने एक नज़र मुआयना किया मनु के खिलौनों का. कोने में पड़ा ट्रक आज तक उसने नहीं चलाया है. मनु का ख़ास खिलौना है यह ट्रक. कोई उसे छू भी ले तो भी करंट लगता है मनु को, ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगता है. अच्छा मौक़ा है अभी. क्यों न आज ट्रक पर हाथ आजमा ही लिया जाये.

अपनी योजना को शब्द देते बोली इशु — 'तो मुझे परेशान करना बंद करो, एक बार भी चिल्लाए तो तुम्हारी पज़ल कभी पूरी नहीं होगी. तुम्हारी ज़िम्मेदारी होगी इसके लिए. या तो अपना यह ट्रक मुझे चलाने दो या फिर अकेले करो जो करना है.'

मनु अपने आपको उस ट्रक का मालिक मानता था. कैसे दे दे. लेकिन फिर यह पज़ल तो अटकी हुई है इसका क्या करे. थोड़ी देर के लिए ही तो देना है ट्रक, फिर तो इशु इसे लौटा ही देगी. क्यों न यह देकर अपनी बिगड़ी पज़ल ठीक करवा ले.

पर नन्हे दिल का बड़ा अहं आड़े आ रहा था — 'मेरा ट्रक है, दूं न दूं मेरी मर्जी. इशु भी तो अपनी चीज़ों को हाथ नहीं लगाने देती मुझे.'

मनु के लिए इशु का यह व्यवहार चोट पहुंचाने वाला था. जो ट्रक इतनी देर से अकेला कोने में रखा था उसे मनु ने कस कर पकड़ लिया. इशु ट्रक को खींचने लगी तो परेशान मनु के मन को और ज़्यादा चोट पहुंची. अब चोट लगेगी तो कहीं न कहीं दर्द तो होगा, उसे भी हुआ. उसके पास एक ही हथियार था रो-रोकर मम्मी को बुलाने का. समझौता वार्ता हो या शांति वार्ता वह गाहे-बगाहे इस हथियार का इस्तेमाल करने में माहिर था. वह रोने लगा ज़ोर-ज़ोर से. रोते-रोते चिड़चिड़ा कर बोलता गया, अस्फुट स्वरों में. जो उसके अलावा कोई न तो समझ पा रहा था ना ही समझने की कोशिश कर रहा था. किसी के न सुनने पर कार का एक्सीलेटर जैसे और दबता जा रहा था, रोने की गति को लगातार बढ़ाते हुए. और भी ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा मनु.

अपनी ताकत दिखाने का अवसर था यह. मम्मी को बुलाना था. जो भी दिखा उसे उठाकर फेंकने लगा. अब उस पर इशु के कुछ भी कहने का असर नहीं हो रहा था. इशु बोलती जा रही थी और मनु रोता जा रहा था. जितनी ज़ोर से इशु बोलती उतनी ही ताकत से वह रोने लगता. यह जताते हुए कि — 'चिल्लाती रहो मुझे कुछ नहीं सुनना.' सुनने की शक्ति का घड़ा भर गया था. रोने की आवाज़ अब अपनी स्पीड लिमिट पार कर चुकी थी.

आख़िर मम्मी को आना ही पड़ा.

'क्यों शोर मचा रखा है तुम दोनों ने?'

दोनों ने अपनी-अपनी शिकायत मम्मी के सामने रखी. दोनों एक साथ बोल रहे थे. मम्मी को भी पता था कि इस समय दोनों को अलग करके ही समझाया जा सकता है. मनु छोटा था पहले उसी को भाव दिया —

'मनु, चुप बिल्कुल चुप. क्या हुआ, नहीं खेलना है इशु के साथ, मत खेलो. चलो बाहर चलते हैं ताज़ी हवा में खेलने.'

मनु को ले जाते समय इशु को आंख से इशारा किया मम्मी ने तो उसे बेहद सुकून मिला. यह इस बात का सबूत था कि मम्मी झूठमूठ मनु को समझाने ले गयी हैं. अपने बड़े होने का और समझदार होने का यह एक इशारा था मम्मी की ओर से जो एक राहत की सांस दे गया इशु को.

मम्मी हाथ पकड़ कर बाहर ले गयीं तो मनु को बहुत ख़ास महसूस हुआ. सीना तानकर मम्मी के साथ बाहर निकल गया. आंखें मलते-मलते इशु को यह चेतावनी भी दे डाली कि — 'हाथ भी मत लगाना मेरे ट्रक को.'

बाहर जाते-जाते रोने की आवाज़ निकलना बंद हो गयी थी क्योंकि इशु पीछे रह गयी थी. बाहर निकल कर देखा तो पास वाला जैनू खेल रहा था लॉन में, जो उससे एक साल छोटा था. अपना रोना भूल गया मनु और जैनू के पास दौड़ता हुआ चला गया. जैनू के घर के सामने रेत का ढेर पड़ा था. खेलने का बेहतरीन मौक़ा था.

अपना-अपना रेत का घर बनाने लगे मनु और जैनू.

साथ-साथ काम करते हुए रेत इकट्ठा करके अपने-अपने घर को आकार देने लगे वे दोनों. साथ रखी जैनू की पानी की बोतल से दोनों पानी लेते जा रहे थे. जैनू की कड़ी मेहनत से उसके रेत के घर की छत टिकी थी. संतुलन बनाये रखने के लिए अपने हाथ का सहारा देता जैनू मुड़कर मनु का घर देखने लगा कि 'कहीं वह पीछे तो नहीं है.'

उसका दिल बैठ गया जब उसने देखा कि मनु का घर उसके घर से कहीं बेहतर और बड़ा आकार ले रहा था. अपने घर को निरीह निग़ाहों से देखते हुए उसने फिर से मुड़कर मनु का घर देखा. अपने घर को वैसा ही आकार देना चाहता था वह. इस देखने और पलटने के चक्कर में जैनू का हाथ जोर से हिला, टक्कर लगी और उसके घर का एक हिस्सा तहस-नहस हो गया.

रही सही हिम्मत टूट गयी जैनू की.

बेबसी में चिल्लाया — 'यह टूट गया है मनु, मदद करो.'

इतनी देर से की गयी कड़ी मेहनत बेकार चली गयी थी. मनु ने पलट कर देखा तक नहीं. अपनी असफल कोशिश पर जैनू को ग़ुस्सा आया. आंसुओं को तो आना ही था - 'मनु...मनु यह टूट गया.'

मनु का ध्यान खींचने के लिए चिल्लाना ज़रूरी था — 'मनु मेरा घर....' जैनू की चीख़ती आवाज़ मनु के कानों में लगातार हमले कर रही थी. उसे अपना काम पूरा करना था. एक नज़र पलट कर देखा जैनू का घर तो पूरा टूट गया था. उतनी ही तेज़ आवाज़ में बोला मनु — 'तुमने तोड़ा है तुम ठीक करो.'

अब जैनू ज़ोर से रोने लगा — 'मेरा घर, मनु इसे ठीक करवा दो न.'

मनु बगैर उसे देखे बोलता गया — 'देखते नहीं मुझे कितना काम है. अगर तुम्हारा ठीक करूंगा तो मेरा घर बनेगा ही नहीं.' मनु के अवचेतन मन ने जो सुना था, जैसे सुना था, जितना सुना था उतना कट-पीट कर बाहर आ गया.

जैनू बेबस होकर मनु के चेहरे को देखता रहा. मनु को थोड़ी दया आ गयी. ध्यान से देखा जैनू को, जिसके कपड़े रेत से पूरी तरह सन गये थे. कहीं बालों में रेत थी तो कहीं हाथों में तो कहीं कपड़ों पर. उसकी कमीज़ की जेब में पड़े लॉलीपॉप की डंडी भी दिख गयी मनु को. अच्छी तरह मालूम था उसे कि जैनू के घर ऐसे लॉलीपॉप बहुत सारे हैं. सौदेबाजी करने का अच्छा मौका था —

'चलो, मैं तुम्हारा घर ठीक कर सकता हूं...'

'सच' जैनू के चेहरे पर चमक आ गयी – 'कर दो न' इस समय एक असहाय विवशता ओढ़े उसका चेहरा मदद की गुहार लगा रहा था.

'मैं तुम्हारा घर ठीक कर दूंगा. मैं बहुत तेज़ी से घर बनाता हूं.' अपनी तारीफ़ के पुल बांध कर सामने वाले को मज़बूर करने की कला थी यह.

'हां, तुम बहुत तेज़ हो,' हथियार डाल दिये जैनू ने.

'मैं तुम्हारा घर ठीक कर दूंगा, तुम मुझे अपना लॉलीपॉप दे दो.' मनु की आंखों में इस समय किसी सौदागर की चतुराई भरी पड़ी थी. साथ ही परखने की कला कि उसके प्रस्ताव का क्या असर हो रहा है सामने वाली पार्टी पर.

बेचारा जैनू, पल भर के लिए उसने सोचा. उसकी मम्मी ने पूरे दिन का कोटा दे दिया था. यह कहते हुए कि — 'आज पूरे दिन और कोई लॉलीपॉप नहीं मिलेगा, समझे.'

अब और तो मम्मी से मांग नहीं सकेगा. अगर यह मनु को दे दिया तो वह क्या खायेगा. उसने इसे बचाकर रखा था ताकि खेलकर फिर आराम से खा सके. पर अब क्या करे. अनायास ही उसके हाथ लालीपॉप के स्पर्श को मचलने लगे.

उसे सोचते देख मनु ने अपना मुंह फेर लिया. अच्छी तरह जानता था वह कि यहां उसका राज चलता है. गरज होगी तो आयेगा जैनू लॉलीपॉप लेकर. इधर जैनू की दिमाग़ी दौड़ पास वाले दरवाज़े तक जाती और लौट आती. मनु ही तो है जो उसके साथ खेलता है. उसका अच्छा दोस्त है. छुटकी तो दिन भर पालने में सोयी रहती है. एक दोस्त की छोटी-सी मांग पूरी करने में कोई हर्ज़ नहीं. वैसे भी मम्मी से दोबारा मांग लेगा यह कह कर कि वह लॉलीपॉप मनु को दे दिया था. झूठ तो बोल नहीं रहा वह. मम्मी चाहे तो पूछ लें मनु से. एक लॉलीपॉप की रिश्वत देकर अपना काम निकलवाना वाज़िब लगा उसे.

'लो यह लॉलीपॉप, अब मेरा घर ठीक कर दो.'

अपने बड़े होने का रौब जताते हुए मनु ने लॉलीपॉप का रैपर खोला और बिना रुके सीधे अपने मुंह में डाल लिया. डंडी को बाहर रखे मिठास का आनंद लेते हुए वह जैनू का घर संवारने में लग गया. एक कुशल सौदागर की तरह ख़ुशी-ख़ुशी उसकी मदद करते मनु का चेहरा दमक रहा था और मदद पाते जैनू का चेहरा भी चमक रहा था. मनु के चेहरे पर अपनी जीती हुई दौलत की ख़ुशी थी. अपने भीतर की चोट को हस्तांतरित कर दिया था उसने और एक ज़िम्मेदार पड़ोसी की ड्यूटी बजा दी थी. जैनू ख़ुश तो था मनु की मदद से पर अपने लॉलीपॉप के जाने का दु:ख भी था. वह लॉलीपॉप जिसे अब मनु चूस-चूस कर खा रहा था.

मनु वाला रुतबा कहीं तो उसके अंदर जगह बनायेगा या वह भी कभी न कभी उसे इस्तेमाल करेगा इतना सोचने के लिए वह काफ़ी छोटा था. नहले पर दहला क्या होता है पता नहीं था. इतनी तो समझ अभी थी नहीं पर फिर भी न जाने क्यों उसकी नज़रें अपनी छोटी बहन को ढूंढ़ रही थीं जो इस समय दोपहर की झपकी ले रही थी.

1512-17 Anndale Dr,
North York, Toronto, On M2N2W7
E-mail : hansadeep8@gmail.com

आमने-सामने

'मसीहा मिलते रहे कारवां चलता रहा!'

✍ डॉ. हंसा दीप

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला और गिरीश पंकज से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. हंसा दीप की आत्मरचना.

जीवन के इस मोड़ पर खड़े होकर पलट कर नज़र डालती हूं तो तीन युग नज़र आते हैं. युग इसलिए कि समयांतर के इस चक्र में ज़मीन-आसमान का फ़र्क रहा. पहला युग वह था जब लालटेन की रोशनी में पढ़-पढ़ कर अंधेरे में ही तैयार होते थे परीक्षा देने जाने के लिए. तब बिजली भी नहीं आयी थी हमारे गांव में. कुछ वर्षों बाद जब बिजली आयी तो नाम के लिए ही आती थी और फिर से चली जाती थी. कंडील और दीये ही हमारा साथ देते थे. आदिवासी बहुल क्षेत्र के ग्राम मेघनगर, जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश में जन्म लेकर वहीं पली-बढ़ी मैं. आज से साठ साल पहले उस पिछड़े हुए इलाक़े की हालत बदतर थी. सप्ताह में एक बार शनिवार को ही हरी सब्ज़ी मिलती थी जो हाट-बाज़ार का दिन हुआ करता था. घर के नीचे की अनाज की खेरची दुकान में भीलों के बीच काम करते हुए पढ़ाई की मैंने. दुकान से स्कूल और स्कूल से दुकान, तब वही मेरी छोटी-सी दुनिया थी. उस दुनिया के आगे न कभी कुछ सोचा था न सोचने की ज़रूरत पड़ी थी. आज कैनेडा के टोरंटो शहर में रहते हुए भी उस दुनिया की बहुत याद आती है. वे दिन भुलाए नहीं भूलते जो जीवन के सबसे ख़ूबसूरत दिन थे.

पिताजी के न रहने पर मसीहा बने बड़े भाई ने पिताजी का फर्ज़ निभाया. भाई के साथ दुकान का काम देखना, हिसाब-क़िताब में उनकी मदद करना और साये की तरह उनके साथ काम में लगे रहना. उन दिनों उस छोटे-से गांव में लड़कियों की स्थिति दयनीय थी लेकिन मुझे उस बुरी स्थिति से कभी नहीं गुज़रना पड़ा. उस समय भी कामकाजी लड़की की भूमिका निभाने का सौभाग्य मुझे मिला और पढ़ने का भी. हां, पढ़ने के लिए आज की तरह यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो की लायब्रेरी नहीं थी बल्कि दुकान में अनाज खाने के लिए ताक में रहती बकरियां थीं जो क़िताब से ध्यान खींच लेती थीं. क़िताबें पढ़ने और समझने का जुनून ऐसा था कि ये रुकावटें न पढ़ पाने का बहाना

कभी नहीं बनीं. शिक्षकगण पढ़ने के शौक़ को देखते हुए अपनी संग्रहित क़िताबें देने में कभी संकोच नहीं करते. बीच-बीच में भीलों के लिए अनाज तौलना, पैसे गिनना और समय मिलते ही फिर से क़िताब में खो जाना. जो भी क़िताब मिल जाये उसे ही अपनी पसंद बना लेने की आदत-सी थी. पढ़ने के शौक़ से कक्षाओं में अव्वल आती रही और भाई को गर्व होता रहा.

घर से कुछ ही दूर महमूद चाचा रहते थे. वे इस छोटी-सी चुपचाप रहकर काम करने वाली लड़की से बहुत स्नेह करते थे. मां जिन्हें हम बच्चों सहित सारे गांव वाले जीजी कहते थे, वे जब भी जीजी से मिलते यह दोहरा देते थे – 'जीजी, तुम्हारी यह लड़की अल्लाह की गाय है.'

कम बोलने वाली इस लड़की के काम को बहुत सराहा जाता था. शिक्षक भी कहते – 'यह लड़की जो भी करती है पूरी निष्ठा के साथ.' इन बातों से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती थी. हर काम को और भी अधिक लगन से पूरा करती. उस छोटे-से जर्जर स्कूल के प्राचार्य श्री आर. एन. सिंह का मुझ पर वरदहस्त था. वे जिले के अन्य स्कूलों के दौरे के समय मुझे साथ लेकर जाते थे. स्कूल हो या स्कूल के बाहर, तहसील स्तर पर या जिला स्तर पर कोई भी कार्यक्रम होता या कोई प्रतियोगिता होती, मेरा नाम सबसे पहले पहुंचता. स्कूल का प्रतिनिधित्व मैं ही करती. संसाधनों के न होने पर भी मैं बहुत मेहनत से हर प्रतियोगिता की तैयारी करती थी. वाद-विवाद प्रतियोगिता हो या निबंध, परिणाम आने पर नाम पहले नंबर पर ही होता था. प्रतियोगिता से पहले मौक़ा देखकर कक्षा के लड़के पूछने आते थे कि — 'तुम पक्ष में बोल रही हो या विपक्ष में. अगर तुम पक्ष में हो तो मैं विपक्ष में रहूंगा क्योंकि पहला नंबर तो तुम्हारा ही है.'

पढ़ाकू छात्र भी मुझसे परेशान थे, कहते — 'तुम्हारे कुल कितने अंक आये हैं बताओ तो ताकि अगली बार हम उतनी पढ़ाई कर सकें.' आज भी जब गांव में हम सब एक दूसरे से मिलते हैं तो इन सारी बातों को याद करके अतीत में खो जाते हैं.

गांव के संकुचित समाज में भी भाई ने मुझे सबसे दूर जाने की आज़ादी दे रखी थी. अपनी बहन नहीं एक बेटी की तरह प्यार देकर सदा मेरी सफलताओं पर मुस्कुराते थे. वह मुस्कुराहट आज भी मैं उनके चेहरे पर देखती हूं जब उनसे अपनी किसी सफलता का ज़िक्र करती हूं. उस युग की ख़ास बात यह थी कि वहां बहुत मौज़-मस्ती थी, न कोई शिकायत थी, न ही किसी प्रकार की कोई चिंता.

दूसरा युग वह था जहां चिंताओं का सागर था, शादी के बाद की दुनिया. ससुराल में पहली बार जब जलती लकड़ी वाले चूल्हे पर खाना बनाया तो वह खाना सौ प्रतिशत फ़्लॉप फ़िल्म की तरह था. कई बार हाथ जले और कई दिन लगे इस नये बदलाव को अपनाने में. चूल्हे पर जैसे-तैसे रोटियां बना-बना कर धुएं में आंखें मसलना और रात तक ढेर हो जाना. यह चौके-चूल्हे का वह काम था जिससे मैं अनभिज्ञ थी किंतु सबसे मिले असीम प्यार ने सीखना बहुत आसान कर दिया था. देवर जी चंचल मेरी दुर्दशा को देखकर चूल्हे को संभालने में मेरी मदद करते थे और धर्म जी (सुपरिचित व्यंग्यकार धर्मपाल महेंद्र जैन) वे मसीहा बने जो जीवनपर्यंत कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलने को तैयार थे. कुल मिलाकर यह संसार सपनों का था और आज भी है. लगभग छः महीने संयुक्त परिवार के साथ बिताकर उज्जैन शहर में पहुंचना मतलब किसी स्वर्ग में पहुंचना था. महाकाल की नगरी के साथ नया जीवन शुरू करके उस धरती से कुछ ऐसा आत्मीय रिश्ता बना कि आज भी यह शहर 'अपना उज्जैन' ही कहा जाता है. तब से लेकर सालों तक धर्म जी के साथ बैंक ऑफ़ इंडिया ने यहां-वहां मध्यप्रेश के कई गांवों और शहरों से परिचित करवाया. वे जब ऑफ़िस जाते थे तो अपनी कटी-पिटी रचनाओं को ठीक से लिख कर पत्रिकाओं में भेजने के लिए तैयार करने का काम मुझे देकर जाते थे. कागज़ के नीचे कार्बन लगाकर नकल करते हुए उसमें अगर कोई ग़लती हो जाती तो सब कुछ फिर से लिखना पड़ता था. ग़ुस्सा तो आता था पर कुछ कह नहीं पाती थी. इसी ग़ुस्से ने मुझे ख़ुद अपना लिखने का साहस दिया. एक बार हिम्मत करके एक छोटी कहानी लिखी और आकाशवाणी इंदौर को भेज दी. स्वीकृति पत्र मिला और रिकॉर्डिंग की तारीख़ भी. पहली बार कहानी रिकॉर्डिंग के लिए जाना बेहद रोमांचक अनुभूति थी. बस फिर क्या था आकाशवाणी से लगातार बुलावे आने लगे. उन दिनों इलाक़े के सबसे ज़्यादा पढ़े जाने वाले प्रसिद्ध अख़बार नई दुनिया में कहानी छपी तो लेखन को नयी गति मिली और दैनिक भास्कर, स्वदेश, नवभारत इंदौर, हिंदी हेराल्ड अख़बारों के अलावा सारिका, मनोरमा, योजना,

शाश्वत धर्म, अमिता, दिल्ली एवं अन्य कई पत्रिकाओं में कहानियां छपती रहीं.

इसी दौरान आकाशवाणी इंदौर और भोपाल के लिए नाटक लिखने का दौर शुरू हुआ. उनके कार्यक्रमों के कथानक के अनुसार पंद्रह मिनट के और तीस मिनट के लगभग तीस से अधिक नाटक प्रसारित हुए. पूरा परिवार साथ बैठकर प्रसारण सुनता था. उन दिनों रचनाओं का पारिश्रमिक मनीऑर्डर के रूप में आता था. जब भी कोई मनीऑर्डर आता था तब पोस्टमैन सहित हम सभी मिठाई और नमकीन ख़रीद कर ख़ुशियां मनाते थे.

समय के साथ क़दमताल मिलाते जीवन के हर बदलाव से नया सीखने की प्रक्रिया शायद प्रकृतिदत्त थी. धर्म जी की नियुक्तियां जब ठेठ देहाती गांवों जीरापुर, खुजनेर, राजगढ़, ब्यावरा में हुईं तो उसका भी भरपूर फ़ायदा मुझे हुआ. वह इलाका सौंधवाड़ के नाम से जाना जाता है. पीएच. डी. के शोध प्रबंध के लिए डॉ. बसंतीलाल बंम ने सौंधवाड़ी लोक साहित्य पर काम करने का निर्देश दिया. एक मालवी भाषी के लिए सौंधवाड़ी बोली पर काम करना बेहद रोमांचक था. बेटियों के जन्म के साथ पीएच. डी. का काम चलता रहा. सौंधवाड़ी लोकगीतों और लोककथाओं के संग्रह के लिए आसपास के गांवों में जाती. गीतों को लिखते हुए, छोटे-छोटे गांवों में घूमते हुए कई कथानक मिले. कहानी 'इंटरव्यू' उसी का प्रतिनिधित्व करती है. डॉ. बंम का सानिध्य अभूतपूर्व था. हर एकत्रित गीत को सुनते और पढ़ते हुए वे भावविभोर हो जाते. उनके चेहरे के हाव-भाव मुझे असीम प्रसन्नता देते. उनके लोक-जीवन के ज्ञान ने मुझे बहुत कुछ सिखाया.

पीएच.डी. मिलने के पहले ही महाविद्यालय में हिंदी के सहायक प्राध्यापक के रूप में मेरी तदर्थ नियुक्ति हुई और छोटी-छोटी दो बच्चियों को स्कूल भेजकर महाविद्यालय के अध्यापन कार्य से परिचय होने लगा. अपने ठेठ मारवाड़ी परिवार की मैं पहली बहू थी जो नौकरी करने का साहस कर रही थी. सिर पर पल्लू डालकर महाविद्यालय पहुंचती थी. यही वजह थी कि मेरी नौकरी की वजह से ससुराल वालों को कभी शिकायत करने का मौक़ा नहीं मिला. मेरे लिए परंपराएं अपनी जगह थीं और काम अपनी जगह था. हां, कुछ शरारती छात्र यदा-कदा बहनजी कह दिया करते थे पर धीरे-धीरे ये सब बातें आम हो गयीं.

जब भारत छोड़ा तब स्थायी नियुक्ति हो चुकी थी और विदिशा, ब्यावरा, राजगढ़ (ब्यावरा) और धार महाविद्यालयों में हिंदी अध्यापन का अनुभव हो चुका था. धार महाविद्यालय में वरिष्ठ कथाकार डॉ. विलास गुप्ते, गीतकार प्रो. नईम, डॉ. गजानन शर्मा, डॉ. मधुसूदन शुक्ल सुधेश जैसे हिंदी के कई मूर्धन्य विद्वानों के साथ काम करने का मौक़ा मिला. घर पर गोष्ठियां होती थीं. महाविद्यालय के कामकाजी रिश्तों के साथ इन सभी से पारिवारिक रिश्ते भी बने. एक स्थापित कहानी लेखिका और सहायक प्राध्यापक के रूप में बहुत कुछ हासिल करने के बाद धर्म जी के न्यूयॉर्क तबादले के साथ सब कुछ छोड़कर विदेश प्रवास के लिए जाना पड़ा.

यह तीसरा युग आधुनिक तकनीकी सुविधाओं से युक्त था. विश्व के बहुचर्चित महानगर न्यूयॉर्क की अट्टालिकाओं ने मेरे छोटे–से हिंदीमयी व्यक्तित्व को आत्मसात तो किया पर लिखना छूटने लगा. भीड़ में ख़ुद की पहचान बनाना फिर से अ आ से शुरू करने जैसा था. बच्चे प्रगति कर रहे थे पर स्वयं की दशा विचित्र थी. धार महाविद्यालय की आत्मीय यादें न्यूयॉर्क जैसे महानगर को बहुत छोटा कर देती थीं. बहनों की, भाइयों की, अपने धार के ख़ास मित्रों की यादों में घुलना अच्छा नहीं लगता था. हर फ़ोन के साथ यह कहना कि 'सब ठीक है' और उत्तर पाना – 'यहां भी सब ठीक है' लंबी दूरी के रिश्तों में दूरियां बढ़ाता रहा. बच्चियां भी बड़ी हो रही थीं. परदेश में उनकी शादी के सपने देखना भी खौफ़नाक लगता था.

बस कुछ सालों के लिए विराम लिया ख़ुद से और उस जीवन से जो पीछे छोड़ आयी थी. एक ही फ़ोकस था बच्चों का ध्यान रखना. तब लिखने में ठहराव आया, जब कथानक सोच में कुलबुलाते तो क़ाग़ज पर लिखकर रख देती, वे एक जगह एकत्रित होते रहे. कई अन्य नौकरियों के प्रस्ताव आते पर एक निश्चय बना रहा कि यदि मुझे काम करना है तो हिंदी ही पढ़ाऊंगी, कोई दूसरी नौकरी नहीं करूंगी. इस प्रण से रास्ते सीमित हो गये पर बंद नहीं हुए थे. स्वयंसेवी के रूप में न्यूयॉर्क के फ़्लशिंग में हिंदू सेंटर में हिंदी पढ़ाना शुरू हुआ तो कई लोग जानने लगे. हिंदी पढ़ाते हुए मैं हिंदी वाली दीदी कही जाने लगी. सदा मन में यह गर्व था कि भारत से दूर रहकर भी हिंदी पढ़ाकर मैं मातृभूमि से जुड़ी हूं. न्यूयॉर्क व न्यूज़र्सी की कवि गोष्ठियों में श्री रामेश्वर अशांत, श्री राम चौधरी जैसे कई हिंदी प्रेमियों को क़रीब से जानने का मौक़ा मिला और वे मेरे काम से

परिचित हुए.

अगला पड़ाव टोरंटो था जब धर्म जी ने नौकरी छोड़कर यहीं बसने का फ़ैसला लिया. पांच साल से जो आशा थी धार महाविद्यालय में फिर से जाकर सहायक प्राध्यापक की नौकरी को ज़ारी रखने की अब वह भी ख़त्म हो गयी थी.

एक बार फिर नया शहर था, नया देश था, नये लोग थे और कटे हुए पौधे को नयी ज़मीन की तलाश थी. भाषा को जीविका बनाने के ध्येय के साथ दीपट्रांस इंक. की अध्यक्ष बनकर अनुवाद का नया काम शुरू किया. कई प्रसिद्ध हॉलीवुड फ़िल्मों के हिंदी में अनुवाद किये. इस नये काम से भाषा तो प्रखर हुई ही साथ ही साथ अनुवाद की चुनौतियां और इसके महत्व को भी विस्तार से समझा. यह यूनिकोड फांट्स के पहले का समय था जब हिंदी के लिए तकनीकी समस्याओं से जूझना पड़ रहा था. कई अलग-अलग हिंदी फांट्स के प्रयोग से हिंदी भाषा से जुड़ी ऐसी कई मुश्किलों के हल खोजने में मदद मिली. इसके साथ हिंदी शिक्षण के लिए रास्तों की खोज ज़ारी थी. तीन-चार सालों की अनवरत कोशिशों के बाद यॉर्क यूनिवर्सिटी में हिंदी कोर्स डायरेक्टर बन कर हिंदी कक्षाएं शुरू करना मील का पत्थर था. यॉर्क यूनिवर्सिटी, टोरंटो की कक्षा में खड़े होकर भारत के महाविद्यालय की अपनी कक्षा का आभास होना ज़ाहिर-सा था. यहां की कक्षा में छात्रों के चेहरे बता रहे थे कि उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा है. ये भारत की बी. ए., एम. ए. की कक्षाएं नहीं थीं. अपनी स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर की हिंदी को बिगिनर्स के स्तर पर लाना था. समय की मांग ने अपने अहिंदी भाषी छात्रों की सुविधा के लिए कोर्सपैक बनाने के लिए मज़बूर किया जिनके द्वारा हिंदी को अंग्रेज़ी में समझाया जा सके. बिगिनर्स और इंटरमीडिएट कोर्स के लिए लगातार दो साल मेहनत करके पुस्तकें एवं ऑडियो सीडी तैयार कीं.

इन अथक प्रयासों से हिंदी पढ़ाने का आत्मविश्वास चरम पर था. उसके बाद तो गति और भी तेज़ हो गयी जब यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो से प्रस्ताव आया. यहां मेरे मसीहा थे डॉ. चलवा कनगनायकम, यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो के सेंट जार्ज कैंपस के अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष. वे उन दिनों साउथ एशियन स्टडीज़ के चेयर थे. उन्होंने मेरे कोर्सपैक की बहुत तारीफ़ की एवं मेरी कक्षाओं में एक ऑडीटर की तरह बैठकर हिंदी सीखी. उनसे एक दिन उपहास करते हुए मैंने कहा – 'सर आप कक्षा में होते हैं तो मेरी रोज ही परीक्षा हो जाती है.' उनका जवाब था – 'ऐसी परीक्षाओं से ही इंसान सफल होता है.'

समय मानों उड़ रहा था. उन्हीं दिनों गर्मी की छुट्टियों में अपनी कहानियों का पहला संकलन 'चश्मे अपने-अपने' के प्रकाशन की योजना बनी. सुना था कि विदेश में रहने वाले लेखकों को पुस्तक छपवाने के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं परन्तु मेरे साथ उल्टा हुआ. मेरठ के डायनामिक पब्लिकेशन के श्री सत्येन्द्र रस्तोगी ने न केवल पुस्तक प्रकाशित की बल्कि रॉयल्टी भी दी. यह सब संयोग था या भाग्य पर मेरे लिए बहुत संतोषजनक था. हर नयी यात्रा में जो पीछे छूटता था उसका दुःख कम सालने लगा इस उम्मीद में कि कुछ नया मेरा इंतज़ार कर रहा है. जमी-जमायी जड़ें कटती रहीं तो कुछ समय के बाद उन्हें और भी नयी उर्वरक मिट्टी मिलती रही फलने-फूलने के लिए. 'चश्मे अपने-अपने' के प्रकाशन से मेरी उड़ान में कुछ पंख और लगे.

यदा-कदा लिखकर सौरभ, चेतना और साहित्यकुंज में कहानियां प्रकाशित होती रहीं. हिंदी चेतना के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी जी का अपार स्नेह सदैव बना रहा. हिंदी के लिए उनकी कर्मठता से प्रेरणा मिलती रही. यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में 'हिंदी दिवस' के सफलता पूर्वक आयोजनों में उनका प्रोत्साहन और मार्गदर्शन मनोबल बनाये रखता.

उन दिनों मेरी हिंदी कक्षाएं चर्चा में थीं. विश्वविद्यालय की प्रचार पुस्तिकाओं में मेरी हिंदी कक्षा के फ़ोटो थे. सेंट जार्ज कैंपस, मिसीसागा कैंपस, स्कारबोरो कैंपस हर जगह हिंदी कक्षाएं शुरू हुईं और मेरा काम चौगुना हो गया. हर कैंपस में कोर्स थे और मैं शहर के सब-वे और बस से सफ़र करते हुए एक कैंपस से दूसरे में जाती थी. यह लिखते हुए बेहद गर्व महसूस होता है कि हर एक सत्र में मैंने हिंदी के चार-चार कोर्स पढ़ाये.

तभी नानी बनने की ख़ुशी एक नयी उमंग लेकर आयी. इस नन्हीं परी के आगमन ने इस कदर अभिभूत किया कि अपना कागज़ी संसार खोलकर उन सारे अधलिखे कथानकों को बाहर निकाला जो उन पलों को अपने अंदर समेटे हुए थे जिन्हें मैं चाहकर भी भूल नहीं सकती थी. कहानियों के साथ-साथ उपन्यास 'बंद मुट्ठी' के बारे में सोचा. अब तक यहां की शैक्षणिक प्रणाली से पूरी तरह

लघुकथा

ज़ुर्माना

राजेंद्र वर्मा

फटी पॉलीथीन के टुकड़े और गत्ते से ढंके टट्टर की खोली. ... रात दो बजे का समय. दो सिपाहियों की गश्त.

- साले, ऐय्याशी करता है?

- नहीं साहब! यह मेरा आदमी है!

- चुप कर साली! धंधा करना है तो कहीं और जाके कर, मेरी बीट में नहीं! - एक सिपाही ने डंडा फटकारा.

- सा'ब जी! ये ठीक कह रहे हैं! - पड़ोसियों ने भी समर्थन किया, पर सिपाहियों पर कोई फ़र्क न पड़ा.

- अच्छा, चल थाने! वहीं होगा फ़ैसला कि कौन किसका क्या है? - सिपाहियों ने गालियां दागते हुए कहा.

कुछ देर मान-मनौव्वल के बाद भी जब मुक्ति नहीं मिली, तो वे थाने के लिए चल पड़े. ... कोई सौ क़दम चले होंगे, कि एक सिपाही ने दया दिखलाते हुए कहा कि अगर वे पांच सौ रुपये दें, तो छूट सकते हैं.

आदमी खोली की ओर तेज़ी से भागा. चार सौ रुपये थे. सौ का जुगाड़ करने में कोई पंद्रह-बीस मिनट लग गये.

जब वह लौटा, तो वहां सन्नाटा था. ... इधर-उधर देख वह आगे बढ़ने वाला ही था कि पास की झाड़ियों में से किसी के कराहने की आवाज़ आयी. ... वह जल्दी से उधर लपका, देखा — पत्नी ही थी.

किसी फ़िल्म की तरह सारा दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम गया — जैसे ही वह लौटा होगा, उन दरिंदों ने पत्नी को झाड़ियों में घसीटा होगा. उसने विरोध किया होगा, चिल्लायी भी होगी; लेकिन उसका मुंह ज़बरदस्ती बंद कर दिया गया होगा, फिर...

पत्नी को सहारा देते हुए संज्ञाशून्य वह इस लुटेरे शहर से कहीं दूर, बहुत दूर चले जाना चाहता था.

३/२९, विकास नगर, लखनऊ-२२६०२२. मो. : ८००९६६००९६

परिचित हो चुकी थी. सोच को नये आयाम मिले. टोरंटो जैसे महानगर को हिंदी दुनिया से परिचित करवाने की मन में ठान ली. यहां की शिक्षा प्रणाली और छात्रों की ज़िंदगी पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त सामग्री थी दिमाग़ में. गर्मी की छुट्टियों में इस कथानक को एक दिशा मिली. एक बार लिखना शुरू किया तो पेज़ दर पेज़ बढ़ते गये. उपन्यास पूर्ण होने पर कई समस्याएं थीं सामने लेकिन समाधान भी तुरंत मिले. 'बंद मुट्ठी' को खोलने के लिए एक और मसीहा आये जीवन में. वे थे सुप्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार श्री पंकज सुबीर जिन्होंने शिवना प्रकाशन से उपन्यास प्रकाशन के लिए तुरंत स्वीकृति देकर भूमिका लिखने के मेरे आग्रह को भी स्वीकार किया.

लेखन को विस्तार देते हुए 'बंद मुट्ठी' उपन्यास ने मेरी मुट्ठी को भी पूरी तरह खोल दिया. मैं अपनी कहानियों की विस्तृत दुनिया में क़दम-दर-क़दम बढ़ते हुए विभोम स्वर, हिंदी चेतना, गर्भनाल, कथाबिंब, भाषा और कई पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर पुन: पाठकों में जगह बनाने की कोशिश कर रही हूं. अगला कथा संकलन एवं उपन्यास प्रकाशन के लिए लगभग तैयार है.

जीवन के इस पड़ाव तक किसी से कोई शिकायत नहीं है. अगर कोई है भी तो वह है अपनी पहचान से, कोई देश अपना नहीं कहता. दुनिया की नज़रों में विदेशी हैं, अपने देश वालों की नज़रों में विदेशी हैं और यहां विदेशियों की नज़रों में भी विदेशी ही हैं. हालांकि किसी के विदेशी कहने से कुछ नहीं बदला है. नियम-क़ानून बदले, सरकारें बदलीं, सब कुछ बदला, मगर मेरे लिए कुछ नहीं बदला. न स्वाद बदला, न मिजाज़. बदलीं सरहदें, बदले देश, नहीं बदला तो उस मिट्टी का अहसास जो आज भी वक़्त-बेवक़्त यादों के झोंकों से उसे हवा देकर आग में तब्दील कर देता है. वह तपिश काग़ज़ पर शब्दों के संजाल उकेरती है. इस लंबे जीवन के बदलते रास्तों पर पड़ाव तो कई थे लेकिन मुझे मसीहा मिलते रहे और कारवां चलता रहा.

1512-17 Anndale Dr,
North York, Toronto, On M2N2W7
E-mail : hansadeep8@gmail.com

'कवित्व ही मेरे जीवन का आदर्श है!'

✍ डॉ. सुधाकर मिश्र

विज्ञापन-बाज़ार, पदलोलुपता और शोहरत में डूबी इस मुंबई मायानगरी में कुछ एक विरले हस्ताक्षर हैं जो अनेकों उपलब्धियों को सहेजे साहित्य साधना में लीन हैं. जिनकी अपनी रचनाधर्मिता का दर्शन ही यह है कि 'स्वार्थ की इस विषैली-कसैली दुनिया में, मैं फूल की तरह रहना चाहता हूं. जिसे पाने के लिए लोग छटपटा रहे हों, मुझे किसी साहब का गुलदस्ता नहीं बनना है.

मात्र पंद्रह वर्ष की आयु में शंपा खंडकाव्य की रचना तथा हिमाद्रि गर्जन, शांति का सूरज, कुरसी, मेघदूत (पद्यानुवाद) किरणिका (खंडकाव्य), अंजुरी भर चांदनी, मौसम बदलता है, सुधाकर शतक एवं रामोदय (खंडकाव्य), जैसी उत्कृष्ट काव्य कृतियों के सृजन कर्ता, देश के लब्धप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में काव्य सरिता प्रवाहित करने वाले विशिष्ट व वरिष्ठ रचनाकार, साहित्य प्रवर डॉ. सुधाकर मिश्र से 'कथाबिंब' के लिए जय प्रकाश त्रिपाठी की बातचीत.

माना इस भौतिक जीवन में, सोना-चांदी ही सब कुछ है,
पर इनके लिए हृदय-वैभव का अपने क्यों अपमान करूं.

☐ आपकी काव्य सृजन की यात्रा कब, कैसे और कहां से शुरू हुई. इसकी प्रेरणा का श्रेय किसको जाता है?

निश्चित रूप से पिता की प्रेरणा व पारिवारिक परिवेश ही मेरे मन गह्वर में कविता की धरा व सृजनात्मकता की उत्प्रेरक बनी. वैसे तो मैंने छठी-सातवीं कक्षा से कविता के नाम पर टूटी-फूटी रचनाएं लिखना प्रारंभ कर दिया था, पर मेरी व्यवस्थित काव्य कृति 'शंपा' है जिसे मैंने हाई स्कूल की परीक्षा देने के बाद सन १९५४ में लिखा था. शंपा दो खंडों में विभक्त एक खंड काव्य है इसका पहला संस्करण सन १९६३ में आया. प्रकाशन काल तक आते-आते उसमें पर्याप्त परिवर्तन और परिवर्धन किये गये. इसके बाद से मेरी काव्य यात्रा अविराम ज़ारी है.

☐ पांच-छः दशकों की इस काव्य यात्रा में आपने भारतीय मूल्यों एवं मानवता के उन्मेष की भावना से आप्लावित होकर अपनी रचनाओं में जन आकांक्षाओं को पिरोया है. इस पर क्या कहना चाहेंगे?

कवि भी सामाजिक धरातल पर सामाजिक परिवेश में ही पनपता है. वह समाज में रहते हुए समाज के संघर्षों को जीता है. अपनी जीवन यात्रा में उसे सामाजिक अच्छाइयों तथा बुराइयों को देखने-समझने का मौक़ा मिलता है. अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वह समाज के भौतिक, आध्यात्मिक व नैतिक जीवन से उन तत्वों को ग्रहण करता है जो समाज को विकास की ओर ले जा सकते हैं और उसे स्थिर बना सकते हैं. भारतीय साहित्य में मानवीय मूल्यों को हमेशा महत्व दिया गया है. भारतीय परंपरा व संस्कृति में अटूट विश्वास के कारण मेरी रचनाओं में भारतीय मूल्यों और मानवतावादी तत्वों का आना स्वाभाविक है. फलस्वरूप क्षमा, दया, सेवा, सहिष्णुता, प्रेम, त्याग, तप, श्रद्धा, सौंदर्य, पवित्रता तथा अध्यात्मिकता आदि के स्वर मेरी रचनाओं में मुखर हो उठे हैं. जहां तक जनता की आंकाक्षाओं का प्रश्न है प्रत्येक रचनाकार को उसका ध्यान रखना ही पड़ता है. कवि की अपनी आंकाक्षाओं में भी जन आंकाक्षाएं छुपी रहती हैं. मैंने भी यथा संभव जनता की मांग तथा अभिलाषाओं को छंदबंद्ध किया है. मेरे द्वारा रचित चाहे हिमाद्रि गर्जन हो या कुरसी, मनीप्लांट और फूल हो या रामोदय सब में जन आकांक्षाएं मुखरित हैं. मैंने सदैव अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को सार्वभौमिक बनाने का प्रयास किया है. मेरी कविता की निम्न पक्तियां इसकी पुष्टि करती हैं.

मैं कब गाता हूं, जनता ही गाती है,

डॉ. सुधाकर मिश्र

जयप्रकाश त्रिपाठी

जनता की वाणी मेरी बन जाती है.
अपनी उंगली पर मुझको वही नचाती है,
वह जब हंसती-रोती कविता बन जाती है.

☐ आपके कई गीत/कविताएं कहीं न कहीं आप के समकालीन कवियों धूमिल, दुष्यंत कुमार, शमशेर बहादुर सिंह के स्वर को मुखर व प्रखर करती प्रतीत होती हैं. इस कथन के बारे में विस्तार से बतायें ?

इसका ज्ञान मुझे नहीं है. हां कतिपय साहित्य मीमांसक मेरी काव्य पुस्तक 'कुरसी' में समाहित रचनाओं को धूमिल तथा दुष्यंत कुमार रचित 'संसद से सड़क तक' तथा 'साये में धूप' में उद्धृत रचनाओं को और मुखर एवं प्रखर बनाने की एक सशक्त कड़ी के रूप में देखते हैं. यहां इतना अवश्य जोड़ना चाहूंगा कि मेरी पृष्ठभूमि गांव की है. आज़ादी के बाद भी मैंने भूख-प्यास, ग़रीबी, अपराध से तड़पते तथा अनेक प्रकार की अमानवीय यातनाओं को झेलते लोगों को बहुत नज़दीक से देखा है. यही कारण है कि मेरी संवेदना के शब्द मानवता के उत्थान तथा शोषण मुक्त समाज की संकल्पना के स्वर का जयघोष करते हैं. जनत्रंत के नाम पर जनता से क़दम-क़दम पर छलावा मेरे मन में गहरी पीड़ा पैदा करता है तब बरबस ये पक्तियां क्रदंन करने लगती हैं-

रंगता गया समय का काग़ज़ मैं आंसू की स्याही से,
पर समाज के मूल्यों की छवि बचा न सका तबाही से.

परंतु मैं स्पष्ट रूप से बताना चाहता हूं कि मैं संस्कृत साहित्य के प्रभाव को नकार नहीं सकता, विशेषकर कालिदास के प्रभाव को. मेरी पहली काव्यकृति 'शंपा' में प्रसाद के 'आंसू' का प्रभाव स्पष्ट है.

☐ कवि सम्मेलन के मंचों पर कई बार आप का शुभ सानिध्य मिला. मंचों पर भी आपके काव्यपाठ पर श्रोताओं को भावाविभोर होते हुए देखा. मंचीय प्रस्तुति और पठनीय साहित्य के बारे आप की राय क्या हैं?

मंचीय कविता और पठनीय कविता में अंतर पहले की तुलना में आज अधिक हो गया है. मंचीय तथा पठनीय कविता का स्वरूप विभाजित हो गया है तथा इनके मध्य का पारस्परिक तादात्म लुप्त होता जा रहा है. मंचीय रचना प्राय: कवि सम्मेलन के मंच से पढ़ी जाती है. इसीलिए उसे लिखते या पढ़ते समय मंच के सामने उपस्थित श्रोताओं का ध्यान रखना पड़ता है. वहां ऐसी रचना सफल नहीं हो सकती जिसको समझने के लिए माथापच्ची करनी पड़े. मंच पर वही रचना सफल होती है जो श्रोताओं पर तुरंत प्रभाव डालने में समर्थ हो और उनको रिझा सके. आज जब अधिकांश लोग साहित्य, विशेष रूप से हिंदी साहित्य पढ़ने में अपना समय नहीं गंवाना चाहते ऐसे में मंचीय कविता के माध्यम से कविता ज़्यादा लोगों तक पहुंच जाती है. वास्तव में मंच से काव्यपाठ करते समय श्रोताओं की सहज प्रतिक्रिया व प्रोत्साहन से बड़ा सुकून मिलता है. यह बात दीगर है कि मंचों से इधर कविताएं कम चुटकुले ज़्यादा परोसे जा रहे हैं जो काव्य के लिए शुभ संकेत नहीं है. पठनीय रचनाएं श्रोता और पाठक के गहन अध्ययन तथा अच्छी काव्य समझ की मांग करती हैं.

☐ साहित्यकार के साथ-साथ आप एक शिक्षाविद भी हैं. शिक्षक के रूप में वर्तमान समाज और साहित्य के अंतर्संबंधों को आप कैसे देखते हैं?

हमारा वर्तमान समाज उपयोगितावादी व उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है. यह कहना तर्कसंगत लगता है कि उसके लिए केवल उसी वस्तु का महत्व है जो भौतिक सुख-सुविधाएं प्रदान कर सके. किसी के अनुभव या विचारों की अभिव्यक्ति को पढ़ने या सुनने का न तो उसके पास समय है और न उसकी अभिलाषा है. इसके बावजूद साहित्य के प्रति लगाव रखने वालों की आज भी समाज में

कमी नहीं है. आज भी निरंतर लिखा और पढ़ा जा रहा है पर अंदाज़ नया है. जहां तक साहित्य का प्रश्न है, वह समाज में तटस्थ अस्तित्व नहीं रख सकता, क्योंकि वह समाज के सत्य-असत्य, अच्छे-बुरे, गुण–अवगुण आदि की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है. साहित्य समाज का प्रतिबिंब ही नहीं बल्कि दिशा निर्देशक और उन्नायक भी है. समाज और साहित्य का अंतर्संबंध बेजोड़ है इसीलिए तो साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है जो पहले भी सत्य था और आज भी सत्य है.

☐ आपकी सबसे प्रिय कृति कौन–सी है जिसे हर साहित्यप्रेमी को पढ़ना चाहिए.

अच्छे–बुरे का चुनाव करना कठिन है. पर गीत–संग्रहों में मुझे 'अंजुरी भर चांदनी' और गीतेतर 'रामोदय' सबसे ज़्यादा प्रिय है. मैं चाहूंगा कि काव्यप्रेमी इन दोनों को अवश्य पढ़ें. जिन्हें व्यंग्य में रुचि है वे 'कुरसी' पढ़ सकते हैं. जो ब्रजभाषा के रसिक हैं उन्हें 'सुधाकर शतक' के वाचन में अवश्य आंनदानुभूति होगी.

☐ आपकी काव्य कृतियों पर डॉ. अवनीश सिंह ने एक शोध प्रबंध लिखा है. इस शोध प्रबंध के कुछ उल्लेखनीय बिंदुओं को जानने की जिज्ञासा है.

डॉ. अवनीश का शोध प्रबंध 'सुधाकर मिश्र की काव्य संवेदना' मेरी रचनाओं पर लिखा गया पहला शोध प्रबंध है. किसी साहित्यकार पर लिखे गये शोध प्रबंधों का पहले बड़ा महत्व होता था. कारण यह है कि सहायक शोधग्रंथों के अभाव में शोधकर्ता और उसके मार्गदर्शक को उस साहित्यकार की प्रत्येक कृति को बार–बार पढ़ना तथा समझना पड़ता है. डॉ. अवनीश सिंह ने अपना कार्य बड़ी निष्ठा से किया है. उन्होंने मेरी रचनाओं में अभिव्यक्ति–यथार्थ, चिंतन के धरातल, सौंदर्य विधान एवं अभीष्ट सौंदर्य का बहुत अच्छा विवेचन किया है. आगे के शोधकर्ताओं के लिए उनका यह प्रयास विशेष रूप से सहायक साबित होगा.

☐ इधर आप द्वारा रचित खंडकाव्य 'रामोदय' की बहुत चर्चा है. साहित्यिक एवं राजनीतिक हलकों में इसकी चर्चा तब और बढ़ गयी जब समाचार पत्रों के माध्यम से लोगों को यह पता चला कि 'रामोदय' की प्रति उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्य नाथ के पास पहुंच गयी. कृपया इस खंड काव्य के बारे विस्तार से बतायें.

रामोदय में राम के आदर्शों को उद्भाषित करने का एक यथार्थ प्रयास है. सात सर्गों में विभक्त इस खंडकाव्य में रावण की पराजय और राम विजय से लेकर राम के पास सीता की वापसी का काव्यात्मक वर्णन है. परंतु इसमें युद्ध का वर्णन नहीं है और कथा भी नाममात्र है. राम के आदर्शों को अवलंब मानकर वर्तमान को आइना दिखाने व सद्मार्ग पर चलने की ओर प्रेरित करना ही इस कृति का मूल है. वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विखंडित होते रिश्ते, गिरते मानव मूल्यों के बीच घिसती-पिटती मानवता को संरक्षित करने के उपक्रमों को रेखांकित करती है तथा राम के आदर्शों को आत्मसात कर सद्मार्ग पर चलने की सघन प्रेरणा देती है. प्रारंभ में राममय हुई सीता के शरीर से फूटती महाज्योति और उनकी ललकार से रावण के स्तंभित होने तथा सीता के प्रति देवी-देवताओं की चिंता का वर्णन है. मध्य में रावण तथा विभीषण के पश्चाताप, युद्ध के कारण लंका की दुर्दशा, मंदोदरी के सीता के प्रति चिंता, आतंक, विरोध और मंदोदरी के चारित्रिक उन्नयन को रामकाव्य में 'रामोदय' का योगदान माना जा सकता है. राम की गरिमा के साथ–साथ इसमें भारतीय संस्कृति की प्रतीक नारी की गरिमा का स्वर भी मुखरित है. मेरा कवि मन समूचे समाज से आग्रह करता है कि —

पूजो–पूजो नारियां पूजने की निधि हैं,
सुख में तो इनके ही भविष्य सपने गढ़ता है.
जो क्षमा दया की मूर्ति सांत्वना की छाया
जिनके सौरभ को पकड़ सृजन आगे बढ़ता है. (रामोदय)

'रामोदय' आम आदमी की पीड़ा, द्वेष, भ्रष्टाचार, आतंकवाद को समाप्त करने की छटपटाहट एवं इसको समाप्त करने के संकल्प सूत्रों की गहन अभिव्यक्ति है जो वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल अखंड भारत की विकास संभावनाओं को एक सशक्त आधार प्रदान करती है. रामोदय में शाश्वत तथा समकालीन दोनों प्रकार के प्रश्नों का उत्तर उपलब्ध है.

☐ हिंदी साहित्य के क्षेत्र में आपने बहुतों को दीक्षित किया पर क्या आपके घर-परिवार में आपकी साहित्यिक विरासत हस्तांतरित हो पायी है?

इस प्रश्न पर मुस्कान मिश्रित अंदाज़ में उत्तर देते हुए डॉ. मिश्र ने बताया कि मुझे और मेरे छोटे भाई हीरालाल 'मधुकर' को काव्यप्रेम पिता जी से विरासत में मिला है. पर

मेरे तथा उनके बच्चों में काव्य के प्रति कोई लगाव नहीं है. हां मेरे सबसे छोटे भाई का छोटा बेटा प्रभात आजकल कविताएं लिखने लगा है. त्रिपाठी जी, आप चाहकर भी किसी को कुछ नहीं दे सकते. काव्यसृजन की पूंजी का हस्तांतरण तो और भी दुष्कर है क्योंकि यह भौतिक संपदा नहीं अपितु साधना और आराधना द्वारा अर्जित पूंजी है. इस कार्य में साधक बने बिना दीक्षा नहीं मिल सकती. पारिवारिक परिवेश केवल अनुकूल माहौल प्रदान करता सकता है.

☐ एलीफिंस्टन कॉलेज़ के हिंदी प्रभागाध्यक्ष के रूप में आपने हज़ारों छात्र-छात्राओं को हिंदी विषयक ज्ञान दिया है. क्या आपने कभी महसूस किया कि आज की युवा पीढ़ी में साहित्य, विशेषकर हिंदी साहित्य में कोई अभिरुचि नहीं है?

मैं यह तो नहीं सकता कि आज की युवा पीढ़ी ख़ासकर कॉलेज के विद्यार्थियों में साहित्य के प्रति कोई लगाव नहीं है. कॉलेज़ के अधिकांश विद्यार्थी हिंदी के पठन-पाठन तथा कार्यक्रमों में सहर्ष अपनी प्रतिभागिता दर्ज़ कराते हैं. उनके मन में हिंदी के प्रति अति सम्मान का भाव है. हां, अपवाद स्वरूप कुछ अंग्रेज़ियतदा बच्चों में हिंदी के प्रति उदासीनता अवश्य परिलक्षित होती है. हिंदी के प्रति उदासीनता के राजनीतिक कारणों से हम सभी परिचित हैं. इसलिए मैं इस पर टिप्पणी करना उचित नहीं समझता. पर मेरा मानना है कि कहीं न कहीं इस उदासीनता के कारक हम साहित्यकार ख़ुद हैं. हम जो भी लिख रहे हैं वह यदि पाठक में जिज्ञासा और अभिरुचि नहीं पैदा कर सकता तो वह हमें क्यों पढ़ेगा? आज की पीढ़ी को उत्कृष्ट साहित्य की दरकार है. इसी संदर्भ में अपनी कुछ पक्तियां उद्धृत करना चाहूंगा.

'दिनकर' का वह ओज, हृदय से निकले गीत 'प्रवासी' के,
'यामा' का रहस्य, पावन स्वर उस 'साकेत, निवासी के.
मत भूलो यौवन मस्ती में सारा देश तुम्हारा है,
पर से ख़तरा नहीं देवि यह जग अपनों से हारा है.

☐ एक गुरू और साहित्यकार के नाते गिरते सामाजिक मूल्यों तीव्र गति से भागती हुई भीड़ को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

भाग-दौड़ की अर्थ प्रधान ज़िंदगी में मूल्यों का क्षरण स्वाभाविक है. परंतु यह भी सच है कि पहले के समाज और आज के समाज में भी सामाजिक मूल्यों का तिरस्कार करने

वाले व्यक्ति को कोई सम्मान नहीं देता. इसीलिए भलाई इसी में है कि आदमी कठिन से कठिन परिस्थितियों में जीवन मूल्यों को भुलाकर नहीं अपनाकर जिये –

लोकमंगल चाहिए हमको, नहीं कुछ और,
पाप को इस भूमि पर संभव नहीं कोई ठौर.
अब न पशुता का गमन हो आदमी के बीच.
द्वेष का संगीत गाये बस वही जो नीच. (रामोदय)

३०१, बी विंग, न्यू सी व्यू
न्यू रविराज कॉम्प्लेक्स, जैसल पार्क,
भायंदर (पूर्व)-४१०१०५.
मो. ९८३३७३९१४३
ईमेल : *sudhakarmishra0439@gmail.com*

जय प्रकाश त्रिपाठी
फ़्लैट नं. ७१-७६, ए एच-४
केंद्रीय विहार, सेक्टर-११
खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०
मो. ९८२०४४०६१७
ईमेल : *jptripathi.55@gmail.com*

तंजावूर बालसरस्वती : 'पारंपरिक' भरतनाट्यम की शिरोमणि कलाकार

✍ डॉ. राजम पिल्लै

''टी. बालसरस्वती (१९१८-१९८४), दक्षिण भारत की एक ऐसी नृत्यांगना और संगीतकार थीं, जो विश्व-भर में २०वीं सदी की एक महानतम कलाकार के रूप में विख्यात थीं. अपने जीवन-काल के लगभग ३० वर्ष की आयु में ही वे एक लेज़ेंड–एक आख्यान-नायिका बन चुकी थीं और 'पारंपरिक' भरतनाट्यम नृत्य शैली की शिरोमणि के रूप में भारत और पश्चिमी कला-जगत में प्रतिष्ठापित हो चुकी थीं. बालसरस्वती एक उत्कट क्रांतिकारी थीं, एक नितांत आधुनिक कलाकार...''

फ़्लैप से उद्धृत पुस्तक : 'बालसरस्वती हर आर्ट एंड लाइफ़' से

कलाकार और क्रांतिकारी? पारंपरिक और नितांत आधुनिक? ये दोनों संज्ञाएं और विशेषण परस्पर विरोधी और विसंगत लगते तो हैं और किसी एक ही व्यक्ति में लगभग एक ही समय में, इन सबका एक साथ होना, असंभव-सा ही लगता है, पर कुछ व्यक्ति एक ऐसे अनूठे पंचधातु मिश्रण से गढ़े हुए होते हैं और उनकी रचना कर चुकने के बाद चूंकि स्वयं सृष्टा ने मूल सांचे को तोड़ दिया होता है सो वे व्यक्ति कालजयी इतिहास में और मृत्युंजयी 'मानवी-सामूहिक चेतना' में 'एकमेव अद्वितीयम्' बनकर अविस्मरणीय हो जाते हैं.

बालसरस्वती-जीवन और कला :

टी. बालसरस्वती — 'बाला', ऐसी ही एक निर्मिति थीं. एक अपूर्व, 'न भूतो न भविष्यति' - सी कला-सेतु! कावेरी और हुगली के बीच, तुंगभद्रा और मिसिसिपी के बीच! सहस्राब्दियों की स्थापत्य-कला से विनिर्मित आस्था-श्रद्धा के भव्य गोपुरम शोभित देवालयों और आधुनिकतम संचार-जन-संचार माध्यमों के ज़रिए अनवरत गतिशील, ऊर्जावान बीसवीं सदी के बीच!

बालसरस्वती : 'हर आर्ट एंड लाइफ़' :

एक जीवनी डगलस एम. नाइट, (जू.) ने लिखी है जो सन २०१० में वेसलियान युनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका से और सन २०११ में वेस्टलैंड लि. द्वारा ट्रांक्वेबार, भारत से प्रकाशित हुई है. लेखक ने अनेक दस्तावेज़ों, समकालीन कलाकारों-समीक्षकों के लेखों, साक्षात्कारों के आधार पर अत्यंत प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत की है. बालसरस्वती का, विश्लेषणात्मक विहंगावलोकन किया है. उनके पूर्ववर्ती और समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का और फिर सहानुभूतिपूर्ण पर तटस्थ भाव से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं. डगलस नाइट इस ऐतिहासिक कार्य को सफलतापूर्वक अंजाम शायद इसलिए दे पाये क्योंकि उनका अपना जीवन भी एक असाधारण-सा संगम है. वे उस अमेरिका देश के निवासी हैं जिसकी कला-अकादमियों, मर्मज्ञों ने बालसरस्वती का अत्यंत सम्मान किया, उन्हें अपने यहां प्रशिक्षण कार्य करने के लिए नियुक्त किया. डगलस स्वयं एक नृत्यकार एवं संगीतकार हैं और भारत आकर यहां रहकर बालसरस्वती की टीम में सहभागी हो चुके हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात शायद यह कि उन्होंने बालसरस्वती की बेटी, उनकी नृत्य-संपदा की उत्तराधिकारी

लक्ष्मी से विवाह किया और इस दंपति का पुत्र अनिरुद्ध नाइट अपनी मां और नानी की उज्ज्वल परंपरा को अमेरिका में जीवंत रखे हुए है.

बालसरस्वती : वंश-परंपरा-संपन्नता और विपन्नता :

बालसरस्वती का जन्म १३ मई १९१८ को ब्रिटिश भारत के मद्रास प्रेसिडेंसी (वर्तमान चेन्नै, तमिलनाडु) में हुआ. बालसरस्वती, मातृवंशक्रम परंपरा के देवदासी कुल की सातवीं पीढ़ी में जन्मी थीं. उनकी पूर्वजा पाप्पाम्माल, एक सुप्रतिष्ठित नृत्यांगना तथा संगीतकार थीं और अठारहवीं सदी के मध्यकाल में तत्कालीन तंजावूर रियासत के राजा तुलजा जी के राज-पत्रों में इस परिवार का उल्लेख मिलता है. बालसरस्वती की नानी वीणा धनम्माल (१८६७-१९३८) बीसवीं सदी के प्रारंभिक चरणों की एक अत्यंत प्रभावशाली संगीतकार थीं. बालसरस्वती की मां जयम्माल, गायिका थीं और उन्होंने बाला को गायन और नृत्य-प्रदर्शन में संगत करने का प्रशिक्षण दिया.

डॉ. राजम पिल्लै

राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्र में उस समय बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे थे. व्यापारी कंपनी, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी अपने यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों और भारतीय शासकों को हराने-पछाड़ने में लगी थी. मैसूर, अर्काट, तंजावूर की रियासतें अब स्वयं अपना अस्तित्व बचाने में लगी थीं, कलाकारों को आश्रय-अनुदान देना अब उनके लिए संभव नहीं रहा था. मद्रास प्रेसिडेंसी में ब्रिटिशों ने अपना पहला व्यापारिक-राजनीतिक केंद्र बनाया; वहीं पर नौकरी-व्यवसाय के अवसर मिलने लगे, इसलिए एक ऐसे नव उद्यमी, नौकरी पेशा मध्यवर्ग का उदय होने लगा जिसने मद्रास में ही विशेषकर संगीत सभाओं की स्थापना की और कलाकारों को प्रोत्साहन दिया, पर जाहिर है, ये कला-रसिक अलग ही जैसी वृत्ति, रुझान के थे; उनमें राजाओं की - सी ऐंठ, सनक नहीं थी लेकिन साथ ही वे उतने उदार भी नहीं थे. इस तेज़-तर्रार, महत्वाकांक्षी वर्ग ने कला और कलाकारों का मूल्यांकन करने का नया ही माप-दंड बनाया.

बालसरस्वती का परिवार तंजावूर से मद्रास आ गया आजीविका की खोज में. पर 'तंजावूर' की स्मृति को सदैव अपने नाम के साथ उसने जोड़े रखा. तंजावूर बालसरस्वती ने चार वर्ष की उम्र से या यों कहें तो शैशव से ही नृत्य-संगीत की शिक्षा पायी और बाद में तंजावूर के विख्यात नट्टुवनार (नृत्य-शिक्षक) के. केदप्पन पिल्लै से नृत्य का प्रशिक्षण पाया. सन १९२५ में, सात वर्ष की आयु में ही उसने अरंगेट्रम् (मंचारोहण) कर औपचारिक रूप से नृत्य-क्षेत्र में प्रवेश किया.

उदयशंकर का प्रोत्साहन :

बालसरस्वती को राष्ट्रीय मंच प्रदान करने में विख्यात नर्तक उदयशंकर का महत्वपूर्ण योगदान था. उदयशंकर ने पारंपरिक भारतीय नृत्य-कला और आधुनिक पाश्चात्य नृत्य-कला, मंच-सज्जा प्रस्तुतीकरण का ऐसा अद्‌भुत संगम प्रस्तुत किया कि पश्चिमी देशों में उन्हें बड़ा सम्मान मिला. प्रख्यात रूसी बैले-नर्तकी अन्ना पावलोवा के साथ उदयशंकर के किये गये नृत्यों ने उन्हें भारत में और विश्व के कला-जगत में प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्रदान की. उदयशंकर के छोटे भाई सितारवादक रविशंकर नर्तक भी थे. उन दोनों ने सन १९३३ में एक नृत्य-प्रदर्शन में बालसरस्वती को देखा और वे बहुत प्रभावित हुए. बाला को उनके दल के साथ विश्व-यात्रा करने का निमंत्रण दिया गया और उससे पहले दिसंबर १९३४ को कलकत्ते के 'ऑल बेंगाल म्यूज़िक कॉन्फ्रेंस' में बाला का नृत्य-प्रदर्शन आयोजित किया गया.

भरतनाट्यम को तमिलनाडु-दक्षिणी भारत की सीमाओं से बाहर राष्ट्रीय मंच पर ले जानेवाली संभवत: बालसरस्वती प्रथम कलाकार थीं. यहीं पर बाला ने कत्थक नर्तक अच्छन महाराज, अली अकबर खां, सत्यजीत राय जैसे परिपक्व और उदीयमान कलाकारों से भेंट की और ये ही कलाकार भविष्य में विश्व के कला-जगत में भारत को उल्लेखनीय स्थान प्रदान करने वाले थे. सत्यजीत राय ने बाद में 'बाला' नामक एक डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म भी बनायी थी. १९८४ में ही, बाला ने रवींद्रनाथ ठाकुर के गीत 'जन गण मन' की साभिनय प्रस्तुति की थी. उस समय कौन जानता था कि यह गीत सन १९३४ को देश को आज़ादी मिल चुकने के बाद राष्ट्रगीत का सम्मान प्राप्त करेगा!

विश्व-भ्रमण और विश्व-ख्याति :

सन १९५० के दशकों में यूरोप और उत्तर अमेरिका में भारतीय नृत्यों के प्रति एक नयी जिज्ञासा और रुचि पैदा

हुई. स्वयं भारत आकर उनके कला-मर्मज्ञों ने विभिन्न नृत्य-प्रदर्शन देखे. बालसरस्वती के नृत्य-कौशल ने इन्हें गहरे रूप से प्रभावित किया. उनका नृत्य जैसे पारंपरिक भरतनाट्यम शैली का आधुनिक रंगमंच पर विशुद्ध आविष्कार. विराट मंच-सज्जा नहीं, अपनी रूप-सज्जा भी न्यूनतम. भाव, अभिव्यक्ति, मुद्रा, अंग संचालन और जैसे पूरी माइथोलॉज़ी ही, पूरा भक्ति-काल ही २०वीं सदी के दर्शकों के समक्ष अवतरित हो उठता था. वहां, कुछ देर के लिए न नृत्यांगना होती थी, न दर्शक होते थे, बस होता था एक भाव-जगत, रूपाकार साकार! संभवत: यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बालसरस्वती को दक्षिण-भारत में, भारत के अन्य भागों में सराहना, प्रोत्साहन मिलने में जितना समय लगा, जितनी बाधाएं आयीं उसका एक अल्पांश भी विदेश में, विशेषकर अमेरिका में उन्हें झेलना नहीं पड़ा.

बालसरस्वती ने पूर्वी एशिया, यूरोप और उत्तरी, अमेरिका में अनेक नृत्य-प्रदर्शन किये. सन ७० के दशक में युनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका की अनेक युनिवर्सिटियों में वे प्रशिक्षक और नृत्यांगना के रूप में नियुक्त की गयीं जिनमें से वेसलियान युनिवर्सिटी (कनेक्टिकट), कैलिफ़ोर्नियां इंस्टीट्यूट ऑफ़ आर्ट्स, युनिवर्सिटी ऑफ़ वाशिंगटन आदि कतिपय उल्लेखनीय संस्थाएं हैं.

बालसरस्वती की प्रतिष्ठा और कीर्ति ने उनके परिवार के होनहार सदस्यों को भी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का सुअवसर प्रदान किया. उनके भाई टी. रंगनाथन और टी. विश्वनाथन अत्यंत कुशल संगीतकार थे और उन्होंने अमेरिका में अपनी संस्थाएं शुरू कीं. बाला की बेटी लक्ष्मी, मां की बहुत ही सुयोग्य उत्तराधिकारी थी और उसने अमेरिका के कलाकार डगलस एम. नाइट (जू.) से विवाह किया. जिन्होंने बालसरस्वती की एक सर्वांग-संपूर्ण-सी प्रामाणिक जीवनी 'बालसरस्वती — हर आर्ट एंड लाइफ़' की रचना कर विश्व के समक्ष बालसरस्वती के संघर्ष, अवसाद, विजयों का लेखा-जोखा-सा प्रस्तुत किया.

बालसरस्वती, अब मद्रास की संगीत-सभाओं, और सामाजिक-सांस्कृतिक दबावों से बहुत ऊपर उठ चुकी थीं. अब तो जैसे उन्हें पुरस्कृत सम्मानित करने की लोगों में होड़-सी लग गयी थी.

कतिपय सम्मान व पुरस्कार :

▸ सन १९५७ को उन्हें भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' अलंकरण प्रदान किया.

▸ सन १९७७ में उन्हें भारत सरकार ने 'पद्म विभूषण' अलंकार प्रदान किया.

▸ सन १९७३ में संगीतकारों को दिया जानेवाला दक्षिण भारत का सर्वोच्च सम्मान 'संगीत कलानिधि' प्रदान किया गया.

समाज-सुधार का ज्वार : देवदासी–प्रथा निर्मूलन का आंदोलन :

९ फरवरी १९८४ को चेन्नै तमिलनाडु में बालसरस्वती का देहांत हुआ. देश-विदेश का कला-जगत नतमस्तक था भरत नाट्यम की पारंरपरिक शैली की शिरोमणि बालसरस्वती की गगनचुंबी सफलताओं पर. लेकिन विदेशों की तो बात ही दूर रही स्वयं भारत में भी बहुत ही कम लोगों को इस दारुण यथार्थ की जानकारी थी कि बालसरस्वती की जीवन-कथा एक अखंड तपस्या थी, संघर्ष था; ख़ून-पसीने से लगभग लथपथ, कवच-शिरस्त्राण सहित एकल लड़ाई थी.

यह एक ऐतिहासिक विडंबना ही थी कि बाला एक स्त्री थी और स्त्री के उद्धार के लिए किया गया एक महत राष्ट्रव्यापी आंदोलन ही उसके अस्तित्व के लिए चुनौती बन गया था. उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध भारत उपमहाद्वीप में नवजागरण का समाज-सुधार का युग रहा. मद्रास, कलकत्ता, बंबई जैसे शहर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बसाये. देश-भर में नयी शिक्षा, नयी न्याय-प्रणाली, पश्चिमी देशों की सफलता की अनुगूंज के रूप में लोकप्रियता पाने लगी. कई सदियों पहले से विदेशी ईसाई मिशनरी भारतीय समाज-व्यवस्था, धर्म-आस्था के अंधविश्वासी पहलू पर प्रहार करते आ रहे थे. नवजागरण काल का स्वरूप मुख्यतया 'सुधारवादी' था और उसमें एक प्रमुख आंदोलन बना भारत के अनेक प्राचीन-मध्यकालीन देवालयों में सदियों से प्रचलित 'देवदासी प्रथा कन्याओं को देवार्पण' करने की प्रथा का उन्मूलन.

बालसरस्वती देवदासी परिवार में जन्मी थीं. राजा-रजवाड़ों के उत्कर्ष-काल में, देवालयों-मंदिरों को विपुल अनुदान मिलता था; देवता की उपासना के एक रूप के तौर पर नृत्य कीर्तन, भजन, करने वाले कलाकारों को आजीवन प्रश्रय मिलता था, उन्हें आजीविका के लिए कोई और व्यवसाय करना नहीं पड़ता था. स्वाभाविक ही देवदासियों के रूप में सुंदर, प्रतिभावान कन्याओं का चयन कर उन्हें

कला-निपुण बनाया जाता था. इन स्त्रियों की सामान्य जनों के बीच अप्रतिष्ठा ही थी लेकिन लौहभित्ति निर्मित भारतीय जाति-व्यवसाय वर्गीकरण की वजह से देवदासियों का अस्तित्व ख़तरे में नहीं पड़ता था.

देवदासी-प्रथा-उन्मूलन आंदोलन ने न केवल इन परिवारों की आजीविका छीन ली बल्कि उनके द्वारा प्रस्तुत कला-प्रदर्शन को भी अश्लील, अनैतिक घोषित किया. सुधारवादी आंदोलन में ही एक पक्ष ऐसे भी प्रभावशाली लोगों का था जो मानता था कि मूल भारतीय परंपरा नैतिक और शुद्ध ही थी केवल उस पर कालांतर में धूल जम गयी है. दक्षिण भारत के देवालयों में देवदासियों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले 'सदिर नृत्य', भरतनाट्यम नृत्य के प्रदर्शन में श्रृंगार रस को लगभग समाप्त कर दिया जाये और 'भले घरों' की 'भली लड़कियां' उसे प्रस्तुत करें तो भरतनाट्यम की प्राचीन गरिमा भी लौट सकती है और शुचिता भी, यों उनकी मान्यता थी. श्रीमती रुक्मिणी अरुंडेल ने यह अभिनव प्रयास किया, सफलता पायी और उन्हें भरपूर धन-बल, जन-बल प्राप्त हुआ.

बालसरस्वती का प्रतिरोध, विरोध, संघर्ष इसी बिंदु से शुरू हुआ. देवदासी प्रथा के औचित्य-अनौचित्य को उन्होंने मुद्दा नहीं बनाया, मुद्दा बनाया, एक कला रूप को श्लील-अश्लील के खांचे में बांटने की अनाधिकार चेष्टा को! जयदेव के गीत-गोविंद का मंचन होगा और उसमें से श्रृंगार-रस को छानकर निकाल देंगे? कन्हैया-यशोदा के रिश्ते में से वात्सल्य रस नहीं निकाला जा सकता तो नायक-नायिका रिश्ते में से श्रृंगार रस भी नहीं. ऐसा करना या तो दंभ होगा या ढकोसला!

बालसरस्वती के पीछे, साथ कोई प्रभावशाली व्यक्ति नहीं थे, संस्था नहीं थी. वह किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था तक जैसे अग्निहोत्र के लिए समिधा-ईंधन चुनती रही और अपने जीवन की गोधूलि-बेला में उसे इस बात की सांत्वना ही मिली कि आख़िरकार वही सही थी; कला एक अखंड तपस्या है, कलाकार अनवरत साधक है. कला की 'शुचिता' पर जोर देनेवालों को आख़िरकार झुकना ही पड़ा; और तब तक तो एक युगांत होकर दूसरा एक युगारंभ हो चुका था.

तंजावूर बालसरस्वती की साधना और सफलता पर चिली देश के कवि पाब्लो नेरुदा की ये पंक्तियां याद हो आती है :

'You can cut all the flowers, but
You cannot keep spring from coming.'

('तुम सभी फूलों को कतरकर फेंक सकते हो
पर तुम वसंत ऋतु को आने से रोक नहीं सकते.')

✆ ६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.: ९८२०२२९५६५.
ई-मेल : pillai.rajam@gmail.com

लघुकथा

फ़ालतू-चीज़

✍ मुकेश शर्मा

वह अपने ज़मीर को फ़ालतू की चीज़ समझ कर बेच देना चाहता था. उसने काफ़ी विचार किया और ज़मीर को बेचने का विवरण इंटरनेट की एक साइट पर डाल दिया. किंतु आश्चर्य... कबाड़ बेचने वाली इस साइट पर ग्राहक लगना तो दूर, कोई पूछताछ तक नहीं आयी. बहुत निराशा हाथ लगी.

अगले दिन शहर के एक पढ़े-लिखे कबाड़ी से संपर्क किया और उसे अपनी मंशा बतायी. कबाड़ी बोला — "अपना पता और मोबाइल नंबर दे जाइए, जैसे ही आपके ज़मीर का कोई ख़रीददार आयेगा तो मैं आपसे संपर्क करूंगा."

कुछ उम्मीद बनी. दुनिया की इस सबसे फ़ालतू चीज़ को बेच देना ही ठीक है.

अगले दिन सुबह डोर बेल बजी. दरवाज़ा खोला तो सामने हाथ में लिफ़ाफ़ा लिये कबाड़ी महाशय खड़े थे. कबाड़ी ने लिफ़ाफ़ा उसे थमा दिया.

"एडवांस पेमेंट?" वह मुस्कराया.

कबाड़ी चला गया. लिफ़ाफ़ा खोला. लेकिन यह क्या...? उसमें महज़ एक काग़ज़ था, जिस पर लिखा था — "अमूल्य के ख़रीददार नहीं."

✆ म.नं.१४२, पार्ट -६, सेक्टर-५, अर्बन एस्टेट, गुरूग्राम (हरियाणा)-१२२००१.
मो. ९८१००२२३१२, ईमेल : mukeshsharma69@gmail.com

उपन्यास अंश

'सज़ा'

✍ डॉ. रूपसिंह चंदेल

बारिश ने बस्ती बरहानपुर की हालत ख़राब कर दी. पहली बारिश में चारों ओर घुटनों तक पानी भर गया. सुबह चार बजे शुरू हुई बारिश चार घंटे तक अबाधित और मूसलाधार होती रही. ब्लॉक एक के सामने के कूड़े के अंबार से कूड़ा गिरकर पानी में तैरने लगा था. पानी काला पड़ गया. कहां गड्ढा था और कहां नहीं यह अनुमान लगाना कठिन था. नीचे के सभी मकानों में पानी भर गया था और लोग बाल्टियों से उसे बाहर उलीच फेंकने के प्रयास कर रहे थे लेकिन जितना ही वे फेंकते उससे अधिक भर जाता. उस दिन भानु प्रताप सिंह और उपाध्याय को अवकाश लेना पड़ा. यद्यपि उपाध्याय तैयार होकर पौने सात बजे कांख में छाता दबाए, हाथ में छोटे-से थैले में लंचबॉक्स लिये भानु के यहां पहुंचे थे, लेकिन भानु ने पहले ही तय कर लिया था कि वह छुट्टी करेंगे. वह पटरे का कच्छा और बनियायन पहने चारपाई पर लेटे हुए थे. बच्चे भी स्कूल नहीं गये थे और दोनों बच्चे फ़र्श पर बैग खोल पढ़ने की तैयारी कर रहे थे. उपाध्याय को देखते ही बच्चे खड़े हुए और 'चाचा जी, नमस्ते' कहकर उपाध्याय को नमस्ते की और अपने बैग संभाल किचन में जा बैठे.

''ठाकुर साहब, क्या सोचा?''

'सोचना क्या? देख रहे हो नदी–नाले भरे हुए हैं. यहां से किसी प्रकार निकल भी गये तो आगे क्या हाल मिलेगा कुछ नहीं कह सकते.'

'फाइनेंस मैनेज़र के साथ आज मेरा वन टु वन था---क्या करूं.'

'करना क्या---मैनेज़र को पता नहीं कि मौसम ने शहर में कहर ढा रखा है. आसमान काले बादलों से घिरा हुआ है. कब तक बरसेगा कहना कठिन है.' चारपाई पर ही सिरहाने उपाध्याय के लिए जगह बनाते हुए भानु प्रताप सिंह बोले.

चारपाई पर बैठते हुए उपाध्याय ने कहा, 'सुना आपने?'

'क्या?'

जयशंकर की पत्नी का हफ़्ते भर से कोई पता नहीं है. ताला बंद करके बिना उसे सूचित किये कहीं चली गयी. चौहान साहब का किराएदार नंदकुमार श्रीवास्तव भी उसी दिन से ग़ायब है. उसके फ़्लैट में भी ताला बंद है.'

'पत्नी बता रहीं थीं.' कुछ देर की चुप्पी के बाद भानु बोले, 'उपाध्याय अपनी पत्नी को समझ नहीं पाया. पत्नी ने बताया था कि उसके लक्षण सही न थे. दोपहर किचन में चारपाई डालकर वह कुछ ऐसा किया करती थी जो एक सामान्य औरत नहीं कर सकती.'

'मेरी पत्नी भी बता रही थीं. हो सकता भाभी जी ने उसे बताया हो.' उपाध्याय ने कहा, 'ठाकुर साहब, यौन कुंठा का प्रदर्शन सामान्य पुरुष भी नहीं करते, जबकि स्त्री की अपेक्षा वह अधिक खुल लेते हैं. लेकिन स्त्री----मुझे लगता है कि वह अति असामान्य प्रकृति की थी. हालांकि उपाध्याय में कोई कमी नहीं दिखाई देती. हट्टे-कट्टे स्वस्थ हैं---जबकि उसकी अपेक्षा नंदकुमार श्रीवास्तव बालक है.'

'युवा तो है. जयशंकर उपाध्याय और उसकी पत्नी की उम्र में दस बारह साल का अंतर है. उसकी पत्नी भी पति से खासा छोटी है--- मानव प्रकृति को समझना अति कठिन है. कौन किस पर रीझ जाये...'

'आश्चर्य है कि तारकनाथ श्रीवास्तव को भी नंद कुमार के विषय में जानकारी नहीं है. मेरी बात हुई थी तब बोले कि वह सोच ही नहीं सकते कि नंदू ऐसा कर सकता है. उनका आज भी मानना है कि नंदकुमार कहीं और गया है न कि उपाध्याय की पत्नी के साथ.' उपाध्याय इतनी देर तक लंच वाला थैला हाथ में ही पकड़े रहे थे, जबकि छाता चारपाई पर रख दिया था. थैला नीचे रखते हुए बोले, 'लेकिन तारकनाथ ही कौन-सा दूध के धुले हैं. राजन की मौसी की छोटी बेटी अभिलाषा को पढ़ाते हैं----इस साल दसवीं में गयी है. राजन और उसका परिवार सीधा है. मौसी की अपनी कोई आय नहीं हैं. पति की पेंशन उनके जेठ और सास-ससुर खा रहे हैं. वह हर तरह राजन और उसके छोटे भाई पर आश्रित हैं और यह अपने में बड़ी बात है कि आज के समय में दोनों भाइयों ने मौसी और उनकी बेटियों की पूरी ज़िम्मेदारी उठा रखी है. बड़ी बेटी की शादी भी यहां आने के दूसरे साल ही कर दी थी. सभी भाइयों ने मिलकर. राजन के बड़े भाई ने भी उसमें सहयोग किया था.'

'आप तारकनाथ के बारे में कुछ कह रहे थे.' भानु ने टोका, 'मौसी के बारे में मैं जानता हूं.'

'हां, एक साल से तारकनाथ अभिलाषा को पढ़ा रहे हैं.'

'यह तो अच्छी बात है. एक दिन मीटिंग के लिए राजन को कहने मैं उनके घर गया था तब उनके घर अभिलाषा को पढ़ाते देखा था.'

'लेकिन अब वह उसे अपने घर पढ़ने के लिए बुलाते हैं.' उपाध्याय ने कहा.

'अच्छा' कहने के साथ ही भानु ने पत्नी को आवाज़ दी, 'ठकुरानी, उपाध्याय को आये देर हो गयी ...दो कप चाय बना दिया होता.'

पत्नी को 'बना दिया होता' सुनकर बुरा लगा. तपाक से बोली, 'आपने कहा नहीं और मैंने सोचा भाई साहब दफ़्तर जायेंगे'

'ऐसे पानी को मंझाकर----' उपाध्याय उभरे दांत दिखाकर हंसते हुए बोले.

'कोई नहीं, अब कहा---बना दो और कुछ नाश्ता भी. मैंने भी नहीं किया.'

'आपने अभी तक स्नान नहीं किया.' पत्नी ने यह सोचकर कि भानु स्नान करके ही नाश्ता किया करते हैं बोलीं.

'अरे मैं कौन-सा कर्मकांडी ब्राम्हण हूं. कभी बिना स्नान ही सही...'

'क्या बना दूं?'

'बरसात के मौसम में क्या बनना चाहिए?' भानु ने पत्नी से उलट प्रश्न किया.

'आप बताओ... हलवा बना देइ सूजी का?'

'मीठा नहीं भागवान... पकौड़ी-सकौड़ी... प्याज़ और आलू की... अगर चटनी की गुंजाइश बने तो वह भी.'

भानु की पत्नी कुछ नहीं बोलीं और तारों से बनी गोल डलिया से आलू-प्याज़ निकाल छीलने लगीं.

'आप क्या कह रहे थे.' भानु ने उपाध्याय से पूछा.

'मुझे तारकनाथ के लक्षण भी सही नहीं लगते.'

'यार उपाध्याय वह लड़की उनकी बेटी से कुछ ही बड़ी है... ज़माना इतना ख़राब नहीं हुआ कि वह अपनी बेटी की उम्र की लड़की के साथ, नहीं उपाध्याय ऐसा नहीं हो सकता. तारकनाथ उसकी मदद कर रहे हैं... हमें इसकी प्रशंसा करना चाहिए.'

उपाध्याय फिर अपने उभरे दांत दिखाते मुस्कराए, 'ठाकुर साहब, ज़माना इतना भी भला नहीं रहा. और एक बात बता दूं कभी भी नहीं रहा. हर युग में ऐसे लोग रहे हैं और मुझे लगता है कि विकास की गति के साथ यह सब बढ़ेगा.' क्षण भर के लिए रुके उपाध्याय फिर बोले, 'मौसी की बड़ी बेटी पर भी तारकनाथ ने नज़रें गड़ा रखी थीं. वह तो हाईस्कूल की परीक्षा के बाद ही मौसेरे भाइयों ने उसका विवाह कर दिया था.'

'आप भी कहानी अच्छी बना लेते हो.' भानु हंसते हुए बोले.

'एक बात बताऊं?' रहस्यमय ढंग से बोले उपाध्याय, 'महिलाओं में ऐसी चीज़ों को सूंघने की अद्भुत क्षमता होती है. मेरी पत्नी को शायद श्रीमती चौहान ने इस बारे में बताया था और उन्हें शायद श्रीमती शुक्ला ने, तारकनाथ और शुक्ला जी आसपास ही रहते हैं न!'

'उपाध्याय जी, महिलाएं कई बार केवल गॉशिप के लिए यह सब एक-दूसरे को कहती रहती हैं. मुझे यक़ीन नहीं हो रहा. मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि समय इतना ख़राब हो गया है कि आदमी बेटी की उम्र की लड़की के साथ----छिः.'

उपाध्याय देर तक चुप रहे. किचन में स्टोव जलने और उस पर कड़ाही चढ़ाए जाने का अहसास हुआ. उपाध्याय को बोले, 'भाभी जी के हाथ की बनी पकौड़ियों का आनंद ही कुछ और है.' वह फिर चुप रहे और भानु के चेहरे की ओर देखते रहे. भानु ने उनके चेहरे की ओर देखा तब वह बोले, 'मैं आपको अपने ननिहाल का एक क़िस्सा सुनाता हूं. यह उन दिनों की बात है जब मेरी मां पैदा भी नहीं हुई थीं. नानी ने बताया होगा.'

'सुनाओ.'

उपाध्याय बोलने ही जा रहे थे कि भानु की बेटी बड़ी-सी थाली में पकौड़ियां लेकर आ पहुंची.

'बेटा, स्टूल उठा लाओ,' थाली पकड़ते हुए भानु बोले.

'भाभी जी की जय हो.' उपाध्याय ने जोर से हांक लगायी.

स्टूल आने पर थाली उस पर भानु ने रख दी और उपाध्याय से मुखातिब होकर बोले, 'चलो, शुरू करो...

अग्रे अग्रे पंडितः....'

'अरे वाह! चटनी भी है.' उपाध्याय बोले. थाली पर दो छोटी कटोरियों में चटनी थी. उपाध्याय ने एक कटोरी हाथ में उठा ली और एक पकौड़ी लेकर चटनी के साथ मुंह के हवाले किया, लेकिन पकौड़ी गर्म थी और मुंह में रखते ही उपाध्याय हो हो कर उसे रोक कर मुंह बाये फूंक मारकर ठंडा करने लगे. ठंडा होने के बाद उसे खाते हुए बोले, 'ठाकुर साहब, आराम से---बहुत गर्म हैं. लेकिन भई मज़ा आ गया.' फिर ऊंची आवाज़ में बोले, 'भाभी जी, लाजवाब. काश! आप जैसी पकौड़ियां मेरी उपाध्यायिन भी बना पाती.'

'खाना तो बना देती हैं न!' भानु ने मज़ा लेते हुए कहा.

'बस जैसे-तैसे---शादी के बाद मैंने सिखाया.'

'मैं आपकी पीड़ा समझ सकता हूं.' मुस्कराते हुए भानु ने कहा और एक पकौड़ी उठायी जो तब तक पंखे की हवा में ठंडी हो चुकी थी. 'सुनाओ, क्या कहना चाह रहे थे.'

दूसरी पकौड़ी मुंह में रखते हुए कुछ भारी आवाज़ में बोले उपाध्याय, 'मेरी नानी के पड़ोस में ठाकुरों का एक घर है. यह तब की बात है जब नानी ब्याहकर वहां आयी थीं. उन दिनों विवाह जल्दी हो जाया करते थे. उनकी उम्र चौदह साल थी जब उनका विवाह हो गया था. उसके चार-पांच साल बाद की बात है. मेरी मां उन दिनों दो वर्ष की थीं. पड़ोसी ठाकुर के एक बेटा और एक बेटी थी. बेटी बड़ी थी. जब की घटना है तब वह सत्रह साल की थी. समय के अनुसार शादी में विलंब हो चुका था. ठाकुर साहब की माली हालत ठीक थी, लेकिन वह उसके लिए अच्छा घर-वर चाह रहे थे. दहेज उन दिनों भी था, लेकिन आज जैसी स्थिति न थी. पढ़े-लिखे लोग नहीं के बराबर थे गांवों में और यह उनका ख़्वाब भी नहीं था. वह चाहते थे कि बेटी का विवाह उससे अधिक से अधिक पांच वर्ष बड़े युवक से करें जिसके पास अच्छी काश्त हो. दो सालों से वह लड़का खोज रहे थे लेकिन बात बन नहीं पा रही थी.' उपाध्याय ने एक और पकौड़ी मुंह में रखी कि तभी भानु की बेटी एक प्लेट में पकौड़ियों का अगला घान ले आयी.'

'भाभी जी, बहुत हैं. अब न भेजें. मैं सुबह नाश्ता कर चुका हूं.' उपाध्याय ने ऊंची आवाज़ में कहा.

'यार, तुम नाश्ता कर चुके हो लेकिन मैंने तो नहीं किया. मेरा पेट क्यों काटना चाहते हो.' भानु बोले.

'ठीक है... आप अपने लिए मंगाएं... मैं इनमें आपका साथ दूंगा.'

'आप अपनी बात जारी रखें. किचन से क्या आता है वह न देखें.'

'हुआ यह ठाकुर साहब कि कुछ दूर पर नाना के एक गोतिया का घर है. वैसे वह मोहल्ला ही नाना के ख़ानदानियों का है. गोतिया की उम्र उन दिनों पैंतीस पार थी. वह पहलवानी करता था. गांव में एक बेड़िया के घर से सटा हुआ उनका जानवरों का घेर था, जिसमें उन्होंने अखाड़ा बना रखा था. उधर से ही दिसा-मैदान जाने का रास्ता था. ठाकुर साहब की बेटी उन्हें चाचा कहती थी. एक दिन अंधेरा होने के बाद लड़की अकेले फरागत होने के लिए गयी. उसे जाते हुए नाना के गोतिया ने देख लिया. लौटते समय अंधेरे में दो लोगों ने लड़की के मुंह पर कपड़ा डाल उठा लिया और उस बेड़िया के घर में ले गये, जो उनके घेर के बगल में था. बेड़िया भी उस लड़की को उठा लाने वालों में था. आप जानते हैं कि गांव में मुंह अंधेरा होते ही उन दिनों लोग घरों में दुबक जाते थे. आज भी ऐसा ही है, लेकिन अब उतनी जल्दी नहीं दुबकते. जगहर रहती है. तब के विषय में सोचें. तब लोग आठ बजे बिस्तर पकड़ लेते थे.' पकौड़ी का आनंद लेते हुए उपाध्याय बोले.

'ठाकुर परिवार रात भर लड़की को जंगल और गांव की हर गली में खोजता रहा. बेटा छोटा था और वह अकेले. उनका कोई भाई भी न था. अकेले ही वह उसे खोजते रहे. संकोच में किसी से चर्चा नहीं की. दो आशंकाएं मन में घूम रही थीं... लड़की को या तो साउज खा गया या वह किसी के साथ और किसी के साथ की आशंका के कारण वह गांव में किसी से कुछ कह नहीं सके. सुबह होने के इंतज़ार में वह घर लौट आये. उन्हें, उनकी पत्नी या बेटे को नींद कैसे आती. वह जागते रहे. भोरहरे इनायत खां के मुर्गे ने बांग दी तब दरवाज़ा खोल लाठी लेकर वह फिर जंगल की ओर जाने के लिए तैयार हुए. लेकिन दरवाज़ा खोलते ही उनकी दृष्टि बेटी पर पड़ी जो दरवाज़ा खुलते ही चीख़कर उनसे लिपट गयी थी, 'बापू !!—' बेटी को घर के अंदर ले गये वह और उसे सांत्वना दी. बेटी की हालत इतनी ख़राब थी कि वह कुछ भी बताने की स्थिति में न थी. मां ने उसके

(शेष भाग पृष्ठ ७० पर देखें...)

कथा यात्रा का महत्वपूर्ण पड़ाव : 'मंगेतर का मोबाइल'

✍ सिद्धेश्वर

'मंगेतर का मोबाइल' – अशोक कुमार प्रजापति
प्रकाशक - वातायन मीडिया एंड पब्लिकेशन प्रा. लि.,
फ्रेज़र रोड, पटना-८०००२६. मूल्य - २५०/-

समकालीन कहानी में रोज़मर्रा की ज़िंदगी को बड़े फलक पर उतारने के लिए बड़े कैनवास की ज़रूरत होती है. निश्चित तौर पर वर्तमान कथाकारों के लिए यह एक चुनौती है और महत्वपूर्ण उपलब्धि भी.

कथाकार अशोक प्रजापति ने बहुत कम समय में सफलतापूर्वक इस चुनौती को स्वीकार किया है. एक से बढ़कर एक, अपनी विश्वसनीय कहानियों के माध्यम से अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में वे कामयाब हुए हैं. आज के जटिल जीवन में लंबी कहानियों को पढ़ पाना सामान्य पाठकों के लिए संभव नहीं हो रहा है. आमतौर पर लंबी कहानियां बोझिल होती हैं, लेकिन प्रजापति जी की कहानी को पढ़ना शुरू करके अंत तक पढ़े बग़ैर पाठक नहीं छोड़ता.

अशोक प्रजापति जी अपने प्रथम उपन्यास 'ठौर-ठिकाना' तथा पहले कहानी संग्रह 'ओपेरा हॉउस' के द्वारा एक बड़े पाठक वर्ग को आकर्षित करने में सफल रहे हैं. कहानी संग्रह 'मंगेतर का मोबाइल' अशोक प्रजापति की तीसरी पुस्तक है. इस संग्रह में कुल ग्यारह कहानियां शामिल हैं. अशोक प्रजापति की कहानियां मानवीय संवेदना के विभिन्न धरातल को छूने में पूरी तरह सक्षम हैं, चाहे वह 'कर्ज़ के दस रुपये' हो या 'प्रथम स्पर्श', 'नीला मर्तबान' हो या 'अपने-अपने स्वर्ग' अथवा 'मंगेतर का मोबाइल' हो. इन सभी कहानियों के माध्यम से लेखक ने आम जीवन की त्रासदी को पकड़ने की सफल कोशिश की है. इसमें दो मत नहीं कि उपन्यास लेखन में भी वे उतना ही माहिर हैं जितना कथा सृजन में. बल्कि 'अपने-अपने स्वर्ग', 'दीपक लगे गांव', 'जामुन का पेड़', 'प्रथम स्पर्श' जैसी लंबी कहानियां पात्रों और घटनाओं की बहुलता की वजह से उपन्यासिका की झलक दे जाती हैं.

सच्चाई और नैतिकता के पक्षधर रहे, अशोक प्रजापति अपने लेखन में भी सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति सचेत दिखते हैं लेकिन रूढ़िवादिता के पक्षधर नहीं हैं.

यह भी सच है कि कोरी कल्पना के बल पर ऐसी जीवंत कहानियों का चित्रण किसी भी कथाकार के लिए संभव नहीं है. अशोक प्रजापति जैसे सुलझे हुए कथाकार की क़लम की ताकत रही है, उनके द्वारा भोगा हुआ ग्रामीण परिवेश का वह यथार्थ जिसे उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया है जो पाठकों के अंत:स्थल को गहरे तक उद्वेलित करता है.

पुस्तक में शामिल 'जामुन के पेड़' में वर्णित ग्रामीण पृष्ठभूमि का जीवंत वर्णन हो या 'कर्ज़ के दस रुपये' में उपस्थित जीवन संघर्ष का अविस्मरणीय मार्मिक दस्तावेज़. 'आर-पार', 'दीमक लगे गांव', जैसी हर कहानी में लेखक ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण भर नहीं किया है बल्कि अपने भीतर उस गांव को जीया है. गांव को एक तरह से ओढ़ा-बिछाया है. जिस ग़रीबी को पांच-सितारा कथाकार वातानुकूलित कमरे में बैठकर क़लम की दूरबीन से देखता है, वहां पर अशोक प्रजापति जैसे ज़मीन से जुड़े लेखक ने उस ग़रीबी को हम–बिस्तर बनाया है. शायद इसीलिए संग्रह में शामिल कहानियों में लेखक का भोगा हुआ यथार्थ अपनी स्वाभाविक संवेदना के साथ उपस्थित हुआ है. माटी का दर्द काग़ज़ के पन्नों पर चलचित्र की भांति जी उठता है.

कहानी 'आर-पार' में एक सामाजिक परिवर्तन के प्रति लेखक आशावादी दृष्टिकोण रखता है. गांव में पढ़ी-लिखी युवतियां जात-पात और दहेज जैसी कुरीतियों को छोड़कर अपना जीवन-साथी चुनने का फ़ैसला करती हैं और माता-पिता को वे इस फ़ैसले को स्वीकारने की सहर्ष कोशिश करती हैं. अपने सौंदर्य के प्रति भी वे जागरूक हैं. गांव में भी शहर जैसे 'ब्यूटी पार्लर' खुल गये हैं. यानी दकियानूसी विचार का गांवों से भी पलायन हो रहा है. भाषा के स्तर पर इस कहानी में नयी चमक देखी जा सकती है.

'रात की तरह उम्र भी गुज़रती जाती है. रात पीछे सरक रही थी और चांद आगे.' सोलर लैंप की रोशनी

छनकर उसकी सफ़ेद चादर पर झिलमिलाने लगी, ऊंट के कूबड़नुमा पहाड़ी पर कोई सुलगता हुआ चांद घर गया था, समस्त घाटी उस आकाशी लालटेन की पीली रोशनी से आलोकित थी. बाप रे! बस्ता तो संभलता नहीं और पहाड़ उठाये फिरूंगा? बहन को कहना, झोले पर सप्तरंगी तितली या सुग्गा बना दे/मेघाच्छादित आकाश के नीचे काफ़ी लंबा तड़ितरेख खिंच जा रहा था / दर्पण की तरह चमकदार दिन निकल आया / छोटी-सी नदी की कजल पानी में नहाकर सफ़ेद रोशनी की चादर ओढ़े सूरज, अपने दिन के सफ़र पर निकल आया / वह रात भर आकाश के सितारे बुहारती, भोर तक दुपट्टा उन सितारों से भर जाता, चांद जूड़े में खुंसा हंसता रहता. — जैसे सैकड़ों वाक्य विन्यास और शब्दों की चित्रात्मक कारीगरी ने अशोक प्रजापति को शिल्प और भाषा का अनोखा चित्रकार बना दिया है.

'कर्ज़ के दस रुपये' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है जो जीवन संघर्ष को बख़ूबी रेखांकित करती है. कहानी का विस्तार तो है लेकिन अंत में अपनी पूरी संवेदना का अहसास करा जाती है यह कहानी. इस कहानी की गहरी संवेदना की वजह से पाठक मर्माहत हुए बिना नहीं रह पाता. ग्रामीण परिवेश एवं निम्न वर्गीय जीवन जी रहे पात्रों का जीवंत चित्रण तो हुआ ही है, लेखक ने कई आंचलिक शब्दों एवं संवादों को कथा में पिरोकर अपने कथा लेखन का अद्‌भुत परिचय दिया है. 'कर्ज़ के दस रुपये' कहानी आज के संवेदनाशून्य हो रहे समाज को पूरी तरह झकझोरती है. आजकल लोग करोड़ों रुपये लूट कर भी शर्मसार नहीं होते, वहीं कहानी का मूल पात्र ग़रीबी का दंश झेलते हुए भी मात्र दस रुपये के कर्ज़ में डूबकर भी अपनी आत्मा को छलनी-छलनी होने से बचा लेता है. इस छोटे उपकार को वह कई गुणा अधिक आदर प्रकट कर चुकाता है. इस कहानी की अद्‌भुत प्रस्तुति के लिए लेखक सचमुच बधाई के पात्र हैं. इन्हें शहरी और ग्राम्य समस्याओं से जुड़ी कहानी लेखन में महारत हासिल है. विषय चयन ज्वलंत और उम्दा होते हैं.

लगभग हर कथाकार अपनी साहित्यिक यात्रा में वेश्या जीवन पर एक अदद कहानी ज़रूर लिखता है. प्रजापति जी ने भी लिखी है — 'कानन क़स्बे की चीख़ें.'

लेकिन यह कहानी अन्य लेखकों से भाषा, भाव और शिल्प के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न है. यह कहानी किसी भी पाठक की संवेदना को छू लेने की कूबत रखती है. घटनाओं की अत्यंत कलात्मक राह चलते हुए कहानी नश्वर जीवन की सार्थकता में परिणति पाती है. एक वेश्या के प्रति पाठकों में श्रद्धा जगाने में यह कहानी सफल होती है और मन द्रवित हो उठता है. इसमें लेशमात्र की भी अश्लीलता नहीं है.

'चालीस साल लंबा स्वप्न' और 'आख़िरी निशाना' पूंजीवादी व्यवस्था की त्रासदी का चित्र खींचने में सफल रही हैं.

पूरी दुनिया को निगलने की प्रक्रिया में दौड़ लगा रहा प्रदूषण का दानव न केवल दिल्ली में दिख रहा है बल्कि कमोबेश यही हाल दुनिया के अन्य महानगरों में भी है. इस भयंकर और ज्वलंत मुद्दे को कहानी 'नीला मर्तबान' में उठाया गया है. यह कहानी वैश्विक समस्या की ओर इशारा करती है और आसन्न ख़तरे के प्रति सचेत करती है. 'प्रथम स्पर्श' एक अत्यंत मार्मिक कहानी है और इसे भी संग्रह की श्रेष्ठ कहानियों की श्रेणी में रखा जा सकता है. इस कहानी के कई प्रसंगों में शब्दों का अनोखा प्रयोग किया गया है.

पुस्तक की शीर्षक कहानी 'मंगेतर का मोबाइल' एक बेहद गंभीर और मर्मस्पर्शी कहानी है जो तथाकथित ग्लोबल गांव की विद्रूपताओं को समेटे हुए है. 'अपने-अपने स्वर्ग' को शीर्षक के रूप में रखा जाता तो संग्रह की गंभीरता और बढ़ जाती. निश्चित रूप से यह कहानी संग्रह पठनीय और संग्रहणीय है.

अवसर प्रकाशन, द्वारिकापुरी,
रोड नं.-२, हनुमान नगर, कंकड़बाग,
पटना-८०००२६
मो. ९२३४७६०३६५

निराधार भ्रम

अशोक गुजराती

रस्सी पर चलती लड़की (कविता संग्रह) **– भगवान वैद्य 'प्रखर'**
प्रकाशक - बोधि प्रकाशन, जयपुर-३०२००६

मूल्य - १५०/-

साहित्यकार भगवान वैद्य 'प्रखर' का यह दूसरा कविता संग्रह है. मैंने उनके नाम से पहले 'साहित्यकार' का विशेषण यों ही नहीं लगाया. वे मेरी नज़र में कवि ही नहीं उम्दा गद्य लेखक भी हैं. उनके अद्यतन चार व्यंग्य संग्रह,

तीन कहानी संग्रह और पांचेक मराठी से हिंदी में अनुदित क़िताबें प्रकाशित हो चुकी हैं. उनके दो कहानी संग्रहों को प्रेमचंद पुरस्कार मिला है. इसका मतलब यह कदापि नहीं कि वे कविता में पीछे रह गये हैं. उनके काव्य संग्रह 'अंतस का आदमी' को भी पुरस्कार प्राप्त हुआ है.

ऐसे हर-फ़न-मौला रचनाकार का स्वयं कहना है कि उनके छोटे-से खेत में कविता के अलावा कई और फ़सलें उगती हैं, बढ़ती हैं, लहलहाती हैं. वैसे कविता को वे मूल उपज मानते हैं — उनके अहसासों का रूपक. वे अति विनम्रता से प्रश्न भी करते हैं कि क्या ये अहसास कविताएं बन भी पाये हैं या नहीं?.... प्रखर जी, यह तो पाठक तय करेंगे कि आपकी अभिव्यक्तियां कितनी कारगर हुई हैं. इस संग्रह की रचनाओं का विश्लेषण कर हम आपके निराधार भ्रम को ग़लत साबित करने पर आमादा हैं.

अपनी भूमिका में सही लिखा है आपने—अनजाने ही 'मन में उद्वेलित हो रही संवेदनाएं कलाकार को विवश कर देती हैं प्रस्फुटन हेतु' — चाहे वह कोई विधा हो. यदि न करे वह तो बेचैनी उसका पीछा नहीं छोड़ती. इस भीतर की आग को हर कोई प्रकट नहीं कर पाता, इसके लिए ज्वालामुखी-सी क्षमता उसमें ज़रूरी है. यह अंतर्भूत होती है लेकिन लगन और प्रयासों की मोहताज़.

आपकी इन सौ कविताओं की विशेषता है विषय वैविध्यता. आपकी दृष्टि इतनी सार्वभौम है कि प्रत्येक दिशा से कुछ न कुछ बटोर ही लाती है. ज्यों पराग-कण अथवा बीज मधुमक्खी या हवा के पंखों पर सवार होकर आपके गुलशन को आबाद करने खिंचे चले आते हों. लेकिन कथ्य के आधार पर आपकी कविताओं का वर्गीकरण करने की अपेक्षा मैं छपे हुए क्रमानुसार अंतर्मन को स्पर्श करती कविताओं को एक-एक कर परखने का उद्यम निभा रहा हूं.

पहली कविता 'गुज़ारिश' में आप प्रेमिका से संबोधित हैं कि तुम्हारे अन्यान्य सामग्री से भरपूर दिल के मर्तबान में मुझे पानी की बूंदों जितनी जगह की दरकार है, जो वास्तव में कहीं भी अपना स्थान बना लेती हैं. दूसरी कविता 'प्रिंट ऑउट' की अंतिम चार पंक्तियां ही अपना मनोरथ स्पष्ट कर देती हैं— 'स्पर्श, गंध, अहसास का भी/प्रिंट ऑउट निकल पाता/तो संबंधों के नाम पर/तुम्हारे-मेरे बीच केवल कोरा स्क्रीन न होता...' तीसरी कविता 'बचपन' में बालक नेट पर सारे सवालों के जवाब पा लेता है परंतु उसके समक्ष परिजनों के मध्य विस्तार पा रही दरारें अनुत्तरित हैं. चौथी कविता — 'मकान और आदमी' में मकान की तरह ही अपनी संतान की प्रतीक्षा में इनसान जर्जर होता जाता है. बावजूद, मकान की हालत अधिक बेहतर है कि उसकी संतान तो नहीं होती...

परिवार में प्रयोग में लाये जानेवाले फ्रिज़, टीवी, वाशिंग मशीन आदि बेकार होने पर उनका हश्र देख घर के बुज़ुर्ग 'दहशत' में हैं कि अब वे ही अकेले पुराने बचे हैं. 'जल' का अपना कोई आकार-प्रकार नहीं होता. वह सागर, नदी, कुएं, गागर, बोतल, आंख या कंठ में समाहित हो उनकी तरह का हो जाता है. उसकी इस फ़ितरत के सामने मनुष्य का अहम पानी-पानी हो जाना निश्चित है. दो जून की रोटी के लिए भूखे-प्यासे फेरी लगाने वाले, मज़दूर, किसान — 'वे ही रचते हैं कविता' — कवि तो नाममात्र के वास्ते काग़ज़ पर हल चलाता है. फ़िल्म के मध्यांतर में, दोस्त के साथ बार में बैठे हों तब, सुनसान बग़ीचे या गांव के बाहर पुल पर किसी स्त्री-मित्र से बतियाते वक़्त 'रिश्ते' यानी जान-पहचान वाले या रिश्तेदार अचानक कहीं से प्रकट हो जाते हैं. जबकि किसी आपदा से घिरे हों, उस समय ये सिरे से नदारद रहते हैं. मन को हमेशा शिकायत रहती है कि उसने जैसा-जैसा सोचा था, कवि वैसा-वैसा हूबहू लिपिबद्ध नहीं कर पाता है. उसकी इस मीन-मेख निकालने की प्रवृत्ति से तंग आकर कवि कहता है — 'रे मन, तुम ख़ुद लिखना सीख लो!' यह था सार-गर्भ प्रखर जी की 'दहशत', 'जल', 'वे ही रचते हैं कविता', 'रिश्ते' और 'तुम लिखना सीख लो' नामक कविताओं का.

'रस्में' कविता में प्रखर जी पूछते हैं कि आदमी घिस-पिट गयीं अपनी वस्तुओं का बहिष्कार तो कर देता है, फिर सड़ी-गली रस्मों को क्यों चिपटाये बैठा है?... 'बहुरूपिया' में वे सूरज के आभारी हैं कि वह इतना कुछ दे जाता है, साथ ही उनको हल्का-सा शिकवा भी है कि वह उनकी उम्र का एक दिन भी ले जाता है. 'पिता' में वे उस सूख गये कुएं की बदहाली का वर्णन करते हैं, जो एक-एक बूंद को तरस गया है. यह वही कुआं है, जिसने पहले लबालब भरा होने पर अपने आसपास के कुओं को पानी पहुंचाया था. वे भावुक हो टिप्पणी करते हैं — कुआं क्यों न हो, था तो वह पिता ही! 'छवि' में वे प्रधानमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में 'समूचे भारत का चित्र उपस्थित है', इस उक्ति पर व्यंग्य

करते हैं. कुपोषित बच्चे की रोती मां, आत्महत्या-ग्रस्त किसान का परिवार, दर-दर भटकते ख़ानाबदोशों की त्रासदी तथा धारावी की विशाल झोपड़पट्टी के बिना क्या वह चित्र पूरे देश का प्रतिनिधित्व कर पा रहा है?

पर्यावरण के प्रति जागरूक करती है उनकी कविता 'नदी', जो लोगों की गंदगी, बांधों के अनैसर्गिक निर्माण और अत्याधिक पानी की बरबादी की वजह से मरणासन्न होने को मज़बूर हो गयी है. 'तितली' में वे शारीरिक शोषण में आत्मा की अविद्यमानता को शब्दों में बांधते हैं. वे मौत को 'जिजीविषा की सौत' कहते हैं इसी शीर्षक की कविता में. बेज़ुबान चुप रहे, अंधे ना देखें, बहरे ना सुनें, लंगड़े ना चल पायें, टुंडे मुट्ठियां ना तान सकें — यह तो स्वाभाविक है मगर जिनके अंग सही सलामत हैं, वे निष्क्रिय क्यों हैं?- 'कोफ़्त होती है' कविता यही प्रश्न उठाती है.

'जगह' बहुत मार्मिक कविता है. इसमें एक भोला बच्चा, जिसकी झोपड़ी को तहस-नहस कर दिया गया है. झोपड़ी बनाने हेतु ऐसा स्थान तलाश रहा है, जहां बुलडोज़र न पहुंच सके. 'इंद्रधनुष' में भी इसी प्रकार किसान की दुर्दशा चित्रित की गयी है, जब बरसात न आने के कारण उसके खेत ऊसर रह जाते हैं. 'जब तक ज़मीन और आसमान में सुलह नहीं होगी, कैसे खिलेगा, उसके परिसर में इंद्रधनुष?' इसी तर्ज़ पर अन्य कविताएं 'धुरी', 'मूर्छित होना ईश्वर का', 'हौसला', 'मां', 'स्मृतियां, 'तुम्हारे-मेरे सपने', 'तुम्हारे खेत', 'तब लगता है तुम हो', 'इंतज़ार', 'नादानी ही सही', 'बोलो न पापा', 'बूढ़ा तालाब' विभिन्न धरातलों पर उगी बेलों जैसी न केवल हमारे मन की दीवारों को संस्पर्श कर जाती हैं, अपितु सोचने को भी विवश करती हैं. इन तमाम कविताओं के ठौर-ठिकानों से यात्रा करते हुए एक ख़ास उपलब्धि की अनुभूति होती है, ज्यों हम ब्रह्मांड में विचरण करते हुए असंख्य ग्रहों की आभासी सुंदरता का अनुभव कर रहे हों. प्रखर जी इसके लिए बधाई के पात्र हैं.

बी-४०, एफ-१, दिलशाद कॉलोनी,
दिल्ली-११००९५. मो. : ९९७१७४४१६४,
ईमेल : ashokgujarati07@gmail.com

उपन्यास अंश

(शेष भाग...)

कपड़े बदलवाए और थपकी देकर सुलाया. दोपहर बाद बेटी ने आप बीती बतायी. सुनकर वह हिल उठे थे, क्योंकि जिसे वह चाचा कहती थी, जिसकी गोद में खेली थी उसने उसके साथ बलात्कार किया था और उसके साथ के तीन अन्य लोगों ने भी जो गांव के थे और जिन्हें बच्ची चाचा ही कहती थी. एक बार नहीं कितनी ही बार रात भर वे उसके शरीर को नोचते रहे थे.' उपाध्याय का स्वर भीग गया. देर तक चुप रहने के बाद बोले, 'ठाकुर साहब, डरे हुए ठाकुर साहब ने पुलिस से शिकायत नहीं की. उन्होंने अपने साले को बुलाकर बेटी को उसके ननिहाल भेज दिया. उस दिन के बाद वह बच्ची गांव कभी नहीं आयी. सुना गया कि उन्होंने साले के एक रिश्तेदार से उसका विवाह कर दिया था साले के यहां से ही.'

'उपाध्याय जी, ऐसे अनाचारों से इतिहास, पुराण भरे पड़े हैं. हर युग में मनुष्य पतित रहा है... पुरुषों की बात कर रहा हूं. ब्रह्मा ने पुत्री के साथ संबंध बना रखे थे. लेकिन उस बच्ची के साथ उन हरामखोरों ने जो किया वह बेहद त्रासद है. उन्हें कठोर सजा मिलनी चाहिए थी.'

'मिली ठाकुर साहब, लेकिन प्रकृति ने दी उन्हें सजा.' उपाध्याय बोले, 'बहुत ही कठिनाई से उसका बुढ़ापा बीता. पहलवानी के कारण या जिस कारण भी उसका चलना कठिन हो गया था. बुड्ढा खटिया में ही टट्टी पेशाब करने लगा था. उसके बेटे उसे उसी हालत में दिनभर पड़ा रहने देते थे. आख़िरी दिनों में उसके मस्तिष्क में कीड़े पड़ गये थे जो नाक के रास्ते निकलते रहते थे. वह स्वयं उन्हें हाथ से पकड़कर फेंकता रहता था. इस कारण बेटों ने उसे उसी घेर में डाल दिया था जहां उसका अखाड़ा था.'

'प्रकृति की नज़रों से कोई नहीं बच सकता. प्रकृति ही ईश्वर है उपाध्याय. मंदिरों में सजे पत्थर नहीं.' भानु अत्यंत भावुक स्वर में बोले.

भानु की बेटी एक घान और लेकर आ गयी थी. उपाध्याय ने हाथ से मना किया उसे और उपाध्याय से उस बच्ची की कहानी सुनकर भानु का मन भी उखड़ गया था. उन्होंने भी बेटी को लौटा दिया.

(भावना प्रकाशन, दिल्ली द्वारा डॉ. रूपसिंह चंदेल के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'बस्ती बरहानपुर' का एक अंश.)

फ्लैट नं.७०५, टॉवर-८, विपुल गार्डेन्स,
धारूहेड़ा, हरियाणा-१२३१०६
मो. नं. ८०५९९४८२३३

संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश शासन द्वारा आयोजित साहित्योत्सव (१४-१६ सितंबर २०१८,भोपाल)

हिंदी भाषा सम्मान : डॉ. शिव चंद दुबे (भोपाल), प्रो. जियांग जिंगकुई (चीन), डॉ. राम प्रसाद भट्ट (जर्मनी), डॉ. छबिल कुमार मेहेर, डॉ. अनुराग सीठा (भोपाल). साथ में मुख्यमंत्री शिवराजजी चौहान एवं डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव, प्रमुख सचिव, म. प्र. शासन.

डॉ. माधव सक्सेना व डॉ. उमेश कुमार सिंह, निदेशक संस्कृति विभाग

डॉ. माधव सक्सेना, डॉ. कमल किशोर गोयन्का, श्रीमती मंजुश्री एवं प्रो. जियांग जिंगकुई

मध्याह्न भोजन अवकाश

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क सूत्र : ए-१०, बसेरा, ऑफ घिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई-४०० ०२७, में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१